4.2

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

वेद-चक्षु

सुखवीर आर्य

हे प्रभो ! हे दयानिधे ! तेरी स्वर्णिम शांति सबको प्राप्त हो। सब सुपथ पर चलें और प्रेम का महत्व समझें। उसे ही परस्पर मिलन में, व्यवहार में अभिव्यक्त करें। मानव मात्र के जीवन में सचेतनता की वृद्धि हो। सब में देवत्व जागे। अहंकार विलीन हो। सब आत्म-चेतना में उठें, आत्म-सत्य में निवास करें। सबको सुबुद्धि प्राप्त हो। सबका मंगल हो।

सुखवीर आर्य

ओ३म्
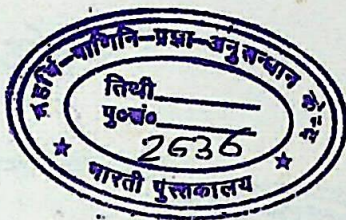
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
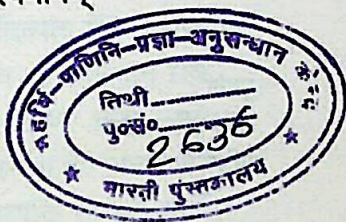
वेद-चक्षु

श्रीअरविन्द चेतना धारा
पांडिचेरी

प्रथम संस्करण : २००१

मुद्रक :
ऑल इंडिया प्रेस
पांडिचेरी

मूल्य : १५ रुपये

प्रकाशक :
श्रीअरविंद चेतना धारा
पांडिचेरी

PUBLISHED BY
SRI AUROBINDO CHETANA DHARA, PONDICHERRY

प्रार्थना

बरसे कृपा भीगे धरा नव जन्म अनुभव कर सके।
अज्ञान तज आत्मा मनुज की दिव्यता में उठ सके।।
वरदान दो निज भाव में मानव सचेतन बन सके।
अंतर्नयन उसके खुलें सर्वत्र आत्मा लख सके।।
हों बंधे एकत्व में सब, सत्य-पथ पर मानव चलें।
नव चेतना का हो उदय, अभिव्यक्ति में फूलें-फलें।।
जागे मनुज, पर्दा हटे, जीवन उठे आलोक में।
दिव्यता छाये यहाँ प्रभु डूबे न कोई शोक में।।

अनुक्रम

प्राक्कथन

जिस शक्ति ने इस जगत की सृष्टि की है उसी की वाणी वेद हैं। सृष्टि-रचना के साथ ही उस सृष्टिकर्ता ने इसमें अवतरित आत्माओं के ज्ञान-वर्धन के लिए वेद प्रदान किये। वेदों के द्वारा हम परमात्मा का तथा उनकी आत्म-अभिव्यक्ति रूप इस सृष्टि का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करते हैं। हमें कर्तव्य का बोध होता है। अज्ञानमय जीवन से बाहर आने की, सीमित अहंमय मानसिक चेतना से ऊपर उठकर परमात्मा के साक्षात्कार करने की प्रेरणा, उसकी शिक्षा प्राप्त होती है। वेद श्रुति हैं। तपःपूत ऋषियों के निर्मल हृदय में आत्म-ज्ञान रूपी सूर्य का उदय हुआ। उसी की अभिव्यक्ति वेद हैं। वेद ज्योति-स्तंभ हैं। मार्गदर्शक हैं। परमात्मा की प्राप्ति में ज्ञान चक्षु हैं। मानव आत्मा के विकास-पथ को आलोकित करने के लिए, सृष्टि में परमात्मा की सर्वोच्च दिव्य देन हैं। जिससे कि मनुष्य जीवन-मार्गों पर सीधे अग्रसर हों। वे अज्ञान की शक्तियों के द्वारा प्रभावित होकर इधर-उधर न भटकें।

वेदों की ओर समस्त संसार को झुकना ही होगा। क्योंकि वेद के मंत्रों में, उनके पीछे भागवत चैतन्य है और संपूर्ण सृष्टि को उसके मूल के साथ युक्त करने के लिए प्रेरित कर रहा है। किन्तु, मानव सचेतन नहीं है, उसके विचार तथा कर्मों में चैतन्य चरितार्थ नहीं है।

उसकी चेतना में अज्ञान का, अहंकार का मिश्रण है। इच्छाओं की पूर्ति ही उसके वर्तमान जीवन का स्वरूप है। हमें महापुरुषों के अनुभवसिद्ध कथन में पूर्ण विश्वास है कि भागवत चैतन्य, पदार्थों के भीतर से, उनके स्वभाव में परिवर्तन लाने के लिए कार्यरत है। एक दिन वह अपने लक्ष्य में अवश्य सफल होगा। संसार बदलेगा। मानव-जीवन उत्थान लाभ करेगा। अज्ञान तिरोहित होगा।

हे अंतस्थ सर्वज्ञ चेतने ! मानवता के वर्तमान चेतना-स्तर का अवलोकन करने के पश्चात् अवसाद से घिरे मेरे हृदय को देख कर – मुझे आश्वासित करते हुए – तूने मधुर शब्दों के रूप में अमृत-वर्षा की। "शीघ्र ही, कुछ ही शताब्दियों में संसार वेदों की शरण ग्रहण करेगा। आत्मा में जागेगा। उसके प्रकाश में जीवन को व्यवस्थित तथा रूपांतरित करेगा। क्षण-भर रुक कर तूने कहा – "अतिमानसिक सत्य को ग्रहण करते ही संसार के लिए स्थायी सुख में पदार्पण करना संभव होगा। धरती की गोद में सृष्टि का अमृतमय मूल अवतरित होगा। उसकी मधुमय ज्योतिर्मयता में मनुष्य जीवन यापन करेंगे। एक अतिमानसिक दृष्टि से मानव लाभान्वित होगा। पदार्थ आत्म-सत्य से ओत-प्रोत परमार्थ तत्व की अभिव्यक्ति दिखायी देंगे। मिथ्या प्रपंच अथवा माया की रचना नहीं। आत्मा में सचेतन जीवन पृथ्वी पर संभव होगा, सत्यं शिवं सुन्दरम् का रूप होगा। "

संसार को आज जिस प्रकाश की आवश्यकता है वह हमें वेद ही प्रदान कर सकता है। वह अमर आलोक, वह संजीवनी सुधा वेद है, वेदों में है। मनुष्य-स्वभाव की नाना प्रकार की वर्तमान निम्न वृत्तियों से मलिन वसुधा-तल को अगर कोई मंत्रपूत जल-धारा धो सकती है तो वह वेद रूपी ज्ञान गंगा की ही ज्योतिर्मय विमल सलिल-धारा हो सकती है।

अंतिम समाधान वेद है। वेद परम आत्मा का प्रकाश है। वेद ज्ञान-संबंधी हर वचन की पराकाष्ठा है, सबका मूल उद्गम है। वेद का हर शब्द सत्यमय है, हितकर है, मंगलमय है।

* * *

संसार की सभी जातियों से मेरा निवेदन है कि वे परस्पर मिलकर अथवा अगर वे चाहें, अलग-अलग भारतवर्ष की संस्कृति की खोज करें। मैं दावा करता हूँ कि अगर वे अपनी खोज में सच्चे रहेंगे, निष्पक्ष होकर खोज करेंगे तो अवश्य उन्हें ऐसी बहुत-सी वस्तुएँ, बहुत-से तत्व मिलेंगे जिनके द्वारा वे अपनी वर्तमान व्यक्तिगत तथा समाजगत सभी समस्याओं का समाधान खोजने में सफल होंगे, उन्हें सहायता मिलेगी।

आर्य संस्कृति ही संसार की रक्षा करने में सहायक सिद्ध होगी। आर्य संस्कृति वेद रूपी सूर्य का प्रकाश है। वेद विश्व-जीवन-मंथन का सार है । विश्व को प्रकाशित

करने वाली दिव्य जीवंत ज्योति ही वेदों के रूप में अभिव्यक्त हुई है। जब मनुष्य स्वार्थ-भावना की सीमाओं से ऊपर उठ जाता है, सीमित व्यक्तित्व के विषय में न सोचकर सारी वसुधा के विषय में सोचना प्रारंभ कर देता है, जब हम सचेतन हो जाते हैं और सृष्ट वस्तुओं के अंदर सृष्टिकर्त्ता के साथ व्यवहार करने लगते हैं, तब हमारे हृदय में वेद रूपी कमल एक-एक पंखुड़ी करके खिलना प्रारंभ होता है। जब मनुष्य के आत्म-कल्याण का समय आता है वह वेदों की ओर मुड़ता है। उसका झुकाव वेदों की शिक्षा की ओर स्वाभाविक हो जाता है।

सुखवीर आर्य
श्रीअरविन्द आश्रम
पांडिचेरी

वेदाभिलाषी भव

वेद पुस्तक नहीं, वेद शब्द का अर्थ, उसका भाव, किसी पुस्तक से संबंधित नहीं। वेद उच्चतम बौद्धिक वाचा नहीं। वेद आध्यात्मिक स्तरों की नाना प्रकार की संगृहीत अनुभव सामग्री भी नहीं। वेद शुद्ध, सीधा परमात्मा से अवतरित ज्ञान है। वेद सृष्टिकर्त्ता ने सृष्टि में अवतरित आत्माओं के लिये विधि-विधान, सृष्टि-रहस्य, स्वात्मज्ञान, इहलोक-परलोक ज्ञान, स्वयं अपना, अपनी अभिव्यक्ति का प्रकृति, जीव, ईश्वर, परमेश्वर, परात्पर तत्व, परम सत्य का, चेतना तथा अस्तित्व के विभिन्न स्तरों का, संपूर्ण सृष्टि, प्रकृति स्थिति सहित ज्ञान-विज्ञान, मानव-आत्मा के भीतर से, उसके आंतरिक मन को, उसकी आंतरिक चेतना को प्रदान की गयी वाणी है। ईश्वर अनादि है। उनकी अभिव्यक्ति भी अनादि है, अतः वेद अनादि है। ईश्वर अतुलनीय है, आत्मा अतुलनीय है, अतः वेद अतुलनीय है। ईश्वर सृष्टि में निवास करते हुए भी सृष्टि से परे हैं। मानव आत्मा में निवास करते हुए, उससे परे हैं। मन में निवास करते हुए उससे परे हैं, अतः वेद अतिमानसिक अमानवीय हैं। सृष्टि में, इससे परे इससे ऊपर तथा नीचे जो भी ज्ञान-विज्ञान है, चेतना के विभिन्न स्तर हैं, ये सब जिस एक अखंड चैतन्य की धाराएं हैं; अनादि अनंत एवं स्वयंभू सत्ता का वह चैतन्य ही वेद है। जहाँ सूर्य है वहीं तेज है, जहाँ ईश्वर है वहीं वेद है।

वेद आत्मा से संबंधित है। वेद को जानने-समझने के लिये हमें मन से परे आत्म-चेतना में प्रवेश करना होता है। सर्वोच्च आध्यात्मिक स्तर पर उठना होता है। अपनी दृष्टि को मानस-स्तर से ऊपर उठाकर, उसके परे आत्मा की ऊँचाइयों पर स्थित करना होता है। वह दृष्टि सर्वज्ञ है। वहाँ पहुँचकर ही हम वेद उपलब्ध कर सकते हैं। पहले से प्राप्त वेद को, उसकी गहनता को समझ सकते हैं। उसके रूपकों में प्रवेश कर, उनके अर्थों को, भावों को, सत्य को, सत्ता को, जान सकते हैं, देख सकते हैं। वेद के हर मंत्र की अपनी आत्मा है। वेदमंत्र एक दिव्य सत्ता की भौतिक अर्थात्, स्थूल रूपमें, बौद्धिक भाषा में, अपनी सीधी अभिव्यक्ति है। मंत्र में पैठकर, उसके भीतर प्रवेश कर, हम मंत्र की सत्ता से तादात्म्य लाभ कर सकते हैं। वह सत्ता हमारे अंदर प्रवेश कर सकती है। हम उसका आ ह्वान कर सकते हैं, उसे धारण कर सकते हैं। अपने अंतर-मन में प्रगट कर सकते है। मंत्र की सत्ता के साथ तादात्म्य लाभ ही, वेद को समझने की कुंजी है।

वेद अर्थात् आत्म-ज्ञान अनंत है। अनंततया अनंत है। हर मंत्र उसकी आंशिक अभिव्यक्ति है। आत्म-ज्ञान अर्थात् अनंत सर्वज्ञ चेतना, उसकी अभिव्यक्ति भी अनंत है, होनी भी चाहिये। क्योंकि ज्ञान अनंत है अतः हम उसके विषय में यह नहीं कह सकते कि वह इतना मात्र ही है। सब कुछ यही है। इससे परे, इससे आगे कुछ नहीं हो सकता।

असंख्य मंत्र मिलकर भी वेद को पूर्णरूपेण अभिव्यक्त नहीं कर सकते। वेद की अपनी अभिव्यक्ति के लिये मानवीय भाषा की परिधि, उसकी सीमाएँ, रूप, व्याकरण और अलंकार आदि भी उसे नहीं बांध सकते। इनकी सीमाओं के बंधन में वेद की अभिव्यक्ति किंचित मात्रा में अनिवार्यतः अपूर्ण रह जाती है।

भविष्य में हम देखेंगे कि वेद संस्कृत भाषा में ही नहीं, विश्व की अन्य भाषाओं में भी अपने-आपको अभिव्यक्त करेगा। वेद किसी देश, जाति, धर्म, संप्रदाय की वस्तु नहीं है। वरन्, वेद के कारण मानव ज्ञानवान है, शिक्षित है, सभ्य है। जीवन-मार्गों पर चलने की योग्यता, वेद प्रदान करता है। जीवन में सच्ची सफलता की कुंजी उसका रहस्य वेद है। वेद मनुष्य को, मनुष्यत्व समझाता है, उसे अपनी सीमाओं से, उसके अपने मानवीय स्वभाव से ऊपर उठाता है। वेद के सहारे मानव अपनी मानवता का अतिक्रमण कर दिव्यता में प्रवेश कर सकता है। वेद शक्ति है, चेतना है, प्रज्ञा है, जीवन है। वेद भूत है, भविष्य है, वर्तमान है। वेद सब संभवनाओं का सिंधु है। व्यक्ति और विश्व दोनो की, भौतिक तथा आध्यात्मिक, सभी समस्याओं का समाधान है। वेद के ग्रहण से मानव सर्वसमर्थ हो जाता है। वेद अद्वितीय निधि है। परावाक्, शब्द ब्रह्म है। वेद प्राकाट्य है। मंत्र रूप साकार सदात्मा की अभिव्यक्ति है। सृष्टि में अवतरित वेद सृष्टि का प्राण, उसकी चेतना है। वेद को उपलब्ध कर हम मुक्त भाव

संसार में विचरण कर सकते हैं, हमारा निवास आत्म-सत्य में संभव होता है। इहलोक और परलोक दोनों पर हमारा अधिकार स्वाभाविक होता है। संपूर्ण सृष्टि आत्म-रूप भासती है। परम्-आनन्द में हमारा निवास स्थायी हो जाता है। हमें परम-सत्य का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। उसकी अभिव्यक्ति हमारा जीवन, जीवन का स्वरूप होता है।

* * *

जीवन वही है जो वेदों के प्रकाश में, उनकी शिक्षा के अनुसार चालित है। वैदिक आदर्श से पूर्ण है। वेदों की शिक्षा पर आधारित है। वेदों के द्वारा परिलक्षित परम दिव्य सत्ता की ओर गतिमान है। जिसकी हर क्रिया में सत्य झलकता हो, परम धर्म ध्वनित हो, आत्म-चेतना से प्रवाहित हो।

* * *

मानव मन के लिए जो ज्ञान अर्थात् सर्वज्ञ चेतना कल्पनातीत है, उसी की अभिव्यक्ति वेद हैं।

वेद के प्रसंग में

वेद अनुभूति का विषय है। मानसिक चेतना में रहते हुए हम वेद प्राप्त नहीं कर सकते और प्राप्त वेद को समझ भी नहीं सकते।

जहाँ वेद अवतरित होता है, वह एक विशाल, दिव्य, अतिमानसिक उच्च्व-चेतना स्तर है। इस अतिमानसिक चेतना में हम दो मार्गों से प्रवेश कर सकते हैं। प्रथम, पूर्ण एकाग्रता में अगर हम अपनी चेतना को सिर के ऊपर स्थिर करें, उसे ऊर्ध्व चेतनाओं की ओर उद्घाटित करें, तथा दूसरी ओर, निरहंकारिता के द्वारा अर्थात् एक ऐसी मनः स्थिति जहाँ हम मन, शरीर, इंद्रियाँ आदि से ऊपर उठ जाते हैं। अपने यांत्रिक व्यक्तित्व से पीछे हटकर प्रकृति के साथ पूर्ण पृथकत्व के द्वारा, एक अन्य, भिन्न प्रकार के दिव्य व्यक्तित्व में प्रतिष्ठित होते हैं। इंद्रिय संयम, हृदय की पवित्रता, मानसिक स्थिरता, ईश्वर में अस्था तथा समर्पण का भाव अनिवार्य शर्तें हैं। तभी हम मन के परे जा सकते हैं और आत्म-चेतना में स्थित हो सकते हैं। कोई भी व्यक्ति इंद्रियों की दासता में निवास करते हुए मानसिक चेतना की परिधि को अतिक्रम नहीं कर सकता। अतः हमारे लिये यह आवश्यक हो जाता है कि हम अपनी सत्ता को पूर्ण शुद्ध, संयमित तथा उद्घाटित करें। वेद का अवतरतण संभव बनाने के लिए चेतना की विशालता, मानव स्वभाव का

2

आत्मा की दिव्यता में उत्थान, मानसिक परिधि का अतिक्रमण अनविार्य शर्तें हैं। हमारा हृदय पूर्ण निर्मल, ज्योतिर्मय होना चाहिये। हमारे द्वारा वेद को प्रकट करने के लिए, हमारी आत्मा हमसे इसी स्थिति की मांग करती है।

हमारा हृदय वेद के प्रकाश से ज्योतिर्मय होने के पश्चात् ही हम सही अर्थ में मानव कहलाने के अधिकारी होते हैं। वेद-विहीन मनुष्य पशु-तुल्य है। वह अपनी निम्न प्रकृति का दास होता है, अहंकार का चलाया चलता है, उसी की इच्छाओं की पूर्ति उसके जीवन का स्वरूप होता है। जिस व्यक्ति की आत्मा जाग्रत नहीं वह शास्त्रों के अनुसार अंधा है। संसार के धूमिल मार्गों पर लक्ष्यहीन सा भटकता, ठोकरें खाता, जीवन के दिन पूरे करता है। उसका जीवन पथ तुच्छ, अर्थहीन, नाना इच्छाओं के ताने-बाने से आच्छादित होता है।

वेद प्रकाश है, पथ प्रदर्शक है, दिशाओं और गंतव्य का ज्ञाता है। वेद हमें अपने कर्तव्य के प्रति सचेतन करता है। निर्भूल पथ, हमारे सम्मुख खोलता है। मानव को आत्म-परिपूर्णता लाभ करने में – जो कि सृष्टि में अवतरित आत्मा का एक मात्र लक्ष्य है – वेद ही एक मात्र सहायक है। संसार में सही दिशा और गंतव्य का बोध हमें वेद के द्वारा ही होता है। वेदोपलब्धि के पश्चात् ही हम यह समझने में समर्थ होते हैं कि मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया, सृष्टि क्या है? कहाँ से आयी ? आत्मा के यहाँ अवतरित

होने का क्या प्रयोजन है ? भगवान ने जो यह लीला रची है, इसके पीछे उनका उद्देश्य क्या है ?

हम यह कहने में आंतरिक प्रसन्नता अनुभव कर रहे हैं कि वेदों के प्रति हिन्दुओं की, भारतीयों की ही नहीं, सभी देशों के निवासियों की, सभी धर्मों के अनुयाइयों की श्रद्धा होनी चाहिए। क्योंकि यह परमात्मा की वाणी है और उन मनुष्यों में अवतरित हुई है जो मनुष्य के स्तर को पार कर चुके थे, उससे ऊपर उठ चुके थे। जिनकी चेतना मनुष्य की मानसिक चेतना परिधि का अतिक्रमण कर चुकी थी। जिनमें अहंकार नहीं था और जिनका व्यक्तिगत अहं विश्वव्यापी हो चुका था। विश्व मंगल ही जिनका एकमात्र प्राप्तव्य था। जो अपनी चेतना में संपूर्ण विश्व को धारण करते थे। विश्व की हर वस्तु, हर प्राणी के साथ एक रहते हुए, उन्हें अपनी चेतना में, अपने हृदय में धारण किये रहते थे। हमारे शास्त्रों में इन महान् आत्माओं को ऋषि कहा है। ये इतने पवित्र थे कि इनके मन, हृदय, और इंन्द्रियों के द्वारा, इनके भीतर से आत्मा की ज्योति, उसका ज्ञान, उसका आनन्द, इनकी बाह्य सत्ता में, जीवन में, कर्मों में पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित होता था, रोम रोम से प्रवाहित होता था। भले ही ये बाहर से देखने में मनुष्य थे लेकिन इनकी चेतना मानव सीमाओं को पार कर चुकी थी। एक दिव्य, अनन्त, परम सत्य और चैतन्य से पूर्ण चेतना में, एक अतिमानसिक स्तर पर इनका निवास स्वाभाविक था।

2A

हे मानव ! तू वेद प्राप्त कर। अपने हृदय आवरण को हटा। अज्ञान-अंधकार से बाहर आ। केवल वेद ही तुझे तेरी सही स्थिति में स्थित करने में समर्थ है। वहीं तुझे आत्म-बोध होगा। तू अपने सच्चे स्वरूप में निवास करते हुए, मुक्त-भाव पृथ्वी पर अपना कर्तव्य निभाते हुए, जीवन यापन करेगा। वेदादेश पालन ही कर्तव्य है, वही मानव-जीवन है। उतिष्ठ और अपना कर्तव्य निर्धारित कर।

वेद तपस्या से प्राप्त होता है, वेद की प्राप्ति के लिये हमें अपने मानसिक स्तर से ऊपर उठना होता है। पूर्वधारणाओं को पीछे छोड़ना होता है, धार्मिक परंपराओं को तिलांजलि देनी होती है। गीता की भाषा में -- सर्वधर्मान् परित्यज्य होना होता है। प्रचलित सीमित ज्ञान-विज्ञान की सब सीमाओं से बाहर आना होता है। जो हम हैं – एक अहमात्मक, सीमित व्यक्तित्व की चेतना में निवास करने वाले मानसिक प्राणी – वही रहते हुए, हम वेद प्राप्त नहीं कर सकते। कारण, वेद विशाल है, असीम है, अनंत है। हम उसे अपनी सीमित चेतना की परिधि में धारण नहीं कर सकते। उसके लिये हमें एक उच्च, अतिमानसिक, आध्यात्मिक चेतना में उठना होता है। वेद अमृत-कुंभ है। उसे ग्रहण करने के लिए, विशेष पात्रता की आवश्यकता होती है। पूर्ण शुद्ध हृदय ही उसे ग्रहण कर सकता है। जो व्यक्ति अज्ञानजनित अहंमय चेतना में निवास करते हैं, जिनकी चेतना की परिधि अति संकीर्ण

है, जिनकी प्रकृति सात्विक नहीं , जिनका आचरण सत्यमय नहीं, सत्य में निवास जिनका स्वभाव नहीं बना है, ऐसे अपने-आपमें बंद व्यक्ति वेद के अर्थ को, उसके भाव को, नहीं समझ सकते, उसमें डुबकी का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

वे सब स्वर्णिम ऊषाएँ जो सृष्टि में जीवन तथा चेतना का रूप ग्रहण करती रहीं, वेद उन ऊषाओं के छन्दमयी भाषा में अभिलेख हैं। उन चेतनाओं के अवतरणों के भी, जिनके फलस्वरूप सृष्टि विकास क्रम आगे बढ़ा।

* * *

अगर अज्ञान से तिरोहित मानव आत्मा को उससे बाहर आना है तो वेद की शरण लेनी होगी। उनसे प्राप्त शिक्षा को जीवन का अंग बनाना होगा।

* * *

हम अपने पूर्वजों के प्रति, वैदिक ऋषियों के प्रति गहन कृतज्ञता प्रकट करते हैं। जिनकी अनुकम्पा से हमें वेद रूपी सूर्य के प्रकाश में खड़े होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

वेद एवं वेद की उपयोगिता

मानव जीवन का, पृथ्वी पर अवतरित आत्मा का चरम लक्ष्य है परमात्मा को पाना, अर्थात् अपनी और जगत की सत्ता के मूलभूत सत्य का साक्षात्कार करना। अतः हमें चाहिए कि दूसरे आवश्यक कर्तव्यों के साथ आत्म-साक्षात्कार को जीवन-लक्ष्य के रूप में चुनें। उसकी उपयोगिता को उसके महत्व को समझें और उसे प्राथमिकता प्रदान करें। अपने वर्तमान अज्ञानमय जीवन-स्तर से ऊपर उठें, आत्मा को प्राप्त करें, आत्म-सत्य में निवास संभव बनायें। आत्मा की उपलब्धि के पश्चात् ही हम भागवत संकल्प के प्रति सचेतन होते हैं, भगवान संसार को किस दिशा में मोड़ना चाहते हैं, इसका ज्ञान हमें प्राप्त होता है। हमारे अंदर आत्म-शक्ति जागती है। हमें कर्तव्य का सही ज्ञान होता है। संसार को सही दिशा दिखाने की न केवल हमारे अंदर क्षमता आती है वरन् उसे सही दिशा में मोड़ने की सामर्थ्य भी ।

हम एक स्वर्णिम युग में प्रवेश कर रहे हैं जो अतिमानसिक चेतना के स्पंदनों से स्पंदित है। जहाँ हमारे लिए परम सत्य के साथ उसकी अभिव्यक्ति-रूप इस सृष्टि का ज्ञान भी संभव होगा। ब्रह्म के साक्षात्कार के साथ, ब्रह्म की सत्ता के सत्य की उपलब्धि के साथ संसार में स्थित पदार्थों तथा प्राणियों में अंतर्निहित सत्य का दर्शन करना

हमारे लिए संभव होगा। अतिमानसिक दृष्टि की विशिष्टता यह है कि उसके द्वारा संसार का अवलोकन करने से यहाँ कुछ भी मौलिक रूप में मिथ्या, माया, अशुभ अथवा पाप नहीं गोचर होता।

आत्मा का एक-पक्षीय ज्ञान, जिसमें आत्म-तत्व तो सत्य भासता हो किन्तु उसकी अभिव्यक्ति रूप यह जगत मिथ्या भासित होता हो – हमारी समस्या का समाधान प्रदान करने में समर्थ नहीं हो सकता। समग्र आत्म-ज्ञान हमारी चेतना का स्तर होना चाहिए, और वही हमारे कर्मों का आधार। यह समय आंतरिक शक्तियों के विषय में सचेतन बनने का है, उन पर अधिकार प्राप्त करने का, उनके द्वारा पृथ्वी के वातावरण को आत्मा की दिव्यता में रूपांतरित करने का है, जो कि धरती की नियति है और संसार को इसकी वर्तमान दैन्य, दुख- कष्टों से भरपूर अवस्था से मुक्त करने का एकमात्र समाधान है। अगर मनुष्य आध्यात्मिक स्तर पर सचेतन नहीं बनता है, अगर उसका निवास आध्यात्मिक सत्य में स्थायी न हुआ, तो उसके कष्टों का कभी अंत नहीं होगा। केवल बौद्धिक बल के सहारे हम सामूहिक चेतना में परिवर्तन नहीं ला सकते, मानव-चेतना का आध्यात्मीकरण नहीं कर सकते। इसके लिए अगर योग की अनिवार्यता अनुभव होती हो, तो हमें योग साधना को भी अपने जीवन का अंग बनाना चाहिए। कारण, आंतरिक सुप्त शक्तियों को जगाने में, आत्मा के

संकल्प को जानने में, ईश्वर की सहायता की ओर उद्घाटित होने में, एक ही श्रेयष्कर पथ है, वह है योग साधन। अतः योग की ओर मोड़ हमारा निर्भूल, निर्भ्रांत, निर्णय होगा। हमारा सही दिशा में सही कदम होगा।

जब हमारा अंतर्मन सांसारिक पदार्थों की क्षण-भंगुरता देखकर, एक विचित्र प्रकार की असंतुष्टि से घिर जाता है और हम किसी स्थायी समाधान को, वस्तुओं के आंतरिक स्थायी सत्य को जानना, देखना तथा प्राप्त करना चाहते हैं, तब हमें पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता अनुभव होती है। हम वेद की शरण ग्रहण करते हैं और करनी भी चाहिए । वेद के अतिरिक्त अथवा उन शास्त्रों को छोड़कर जिनमें वेद की चिंतन-धारा और अनुभूति प्रवाहित हुई है, अन्य कोई शास्त्र ऐसा नहीं है जो मानव आत्मा को उसकी अभीप्सा की सिद्धि में सहायता प्रदान कर सके। हम कह सकते हैं कि जिन महापुरुषों ने संसार को सही दिशा प्रदर्शित की, आत्म-परिपूर्णता के पथ पर उसका मार्ग-दर्शन किया, जिनके संदेश अभी भी सूर्य के समान पृथ्वी के वातावरण को प्रकाशित कर रहे हैं, वे सब वेद रूपी सत्य-सूर्य की ज्योतिर्मय रश्मियों को ही विकीर्ण कर रहे थे।

कुछ भावुक जन वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना, जीवन लक्ष्य के रूप में चुनते, देखे जा रहे हैं। मैंने भी, जब मैं सात वर्ष का था, इसी लक्ष्य को, अपने जीवन के तीन लक्ष्यों में, सर्व प्रथम स्थान प्रदान किया था। वेदाध्ययन को

जीवन-लक्ष्य के रूप में चुनना एक सुंदर तथा वरणीय भाव है। इसमें मानव जीवन अपने सामान्य स्तर से एक उच्च, आध्यात्मिक धरातल पर उठ जाता है। हमारा आचरण शुद्ध-सात्विक, व्यवहार सत्यमय, आत्मा की ज्योति से ज्योतित हो जाता है। आत्म-साक्षात्कार का मार्ग हमारे सम्मुख प्रशस्त हो जाता है, उसके रहस्य उद्घाटित हो जाते हैं। उसकी दिव्य उपलब्धियों का हमें ज्ञान हो जाता है।

कुछ मनीषीगण अध्ययन की अपेक्षा अंतर्मुखता पर, हृदय में प्रवेश और वहाँ स्थित होने पर बल देते हैं, आत्म-साक्षात्कार को मानव-जीवन में प्रथम तथा सर्वोच्च स्थान प्रदान करते हैं। हमें इन मनीषियों का भाव भी सही प्रतीत होता है और अब हम दो नौकाओं में एक साथ यात्रा करने की अभीप्सा अपने हृदय में उठती देख रहे हैं। यह संभव है। हम इसे असंभव नहीं मानते। हमारे पूर्वज इसे संभव मानते थे। ऋषि-मुनि अपनी संतानों को वेदाध्ययन के साथ ही आत्म-साक्षात्कार की शिक्षा प्रदान करते थे उसका अभ्यास कराते थे।

कुछ भी हो शास्त्र-कथनानुसार यह स्पष्ट है कि आत्म-साक्षात्कार बिना अध्ययन भी संभव हो सकता है। अध्ययन हमें मार्ग बता सकता है, लक्ष्य की ओर इंगित कर सकता है, किंतु हमें हमारी सत्ता के सत्य में स्थित नहीं कर सकता। हमारे बंद द्वार नहीं खोल सकता, पर्दा नहीं हटा सकता, आत्म-दर्शन की अनुभूति प्रदान नहीं कर सकता।

वेद को समझने के लिए, वेद में प्रवेश पाने के लिए, मनुष्य को अपने जीवन-स्तर को उच्च, शुद्ध सात्विक बनाना होता है। अर्थात् पशु मिश्रित मानव प्रकृति से ऊपर उठना होता है।

कोई भी व्यक्ति जिसका स्वभाव शुद्ध सात्विक नहीं, जिसके अंदर अहंकार है, लोभ, मोह, स्वार्थ की वृत्तियाँ है, जिसने अपने-आपको शारीरिक चेतना से, इंद्रिय-जीवन से, ऊपर नहीं उठाया, जो मानसिक चेतना की परिधि में बंद है, उसका अतिक्रमण नहीं किया, जो आध्यात्मिक चेतना की अनुभूति से दूर है, जिसके हृदय में जग-जन-मंगल भावना के लिए स्थान नहीं, प्राणिमात्र के लिए प्रेम नहीं, दूसरी जातियों के लिए आत्मीयता नहीं, जो उन्हें दूसरे समझता है, पराये मानता है, दूसरों के श्रेय में, उनके सुख में, जिसे आंतरिक सुख की अनुभूति नहीं होती वह वेदों को नहीं समझ सकता।

यही कारण है कि पृथ्वी के दूसरे भागों में सामान्य जन वेदों को समझने में असमर्थ रहे, वेदों की रूपक भाषा का सही अर्थ निकालने में असफल सिद्ध हुए। विरले ही, और वे बहुत ही कम हैं, ऐसे हुए हैं, जिन्होंने मन सहित आत्मा को, वैदिक शिक्षा के प्रति समर्पित किया और वेदों से लाभान्वित हो सके।

जो सीमित व्यक्तिगत अहंभाव की तृप्ति को भूलकर, संसार के उपकार में संलग्न है, जो आत्मा की विशालता में

निवास करता है। उसी दृष्टिकोण से जगत को देखता है। सारे संसार को एक परिवार मानता है। मानव मात्र को बंधु रूप में देखता, धर्मों और जातियों की सीमाएँ जिसे स्पर्श नहीं करती, इसी चिंतन में जिसकी आयु का बड़ा भाग बीत गया, जो प्रत्येक समाधान के लिए ईश्वर की ओर, अंतस्थ आत्मा की ओर मुड़ता है, आत्मा के द्वारा प्रदत्त समाधान को ही सच्चा एकमात्र समाधान मानता है और उसीकी चरितार्थता को अपने जीवन-लक्ष्य के रूप में ग्रहण करता है, उसकी सिद्धि में हर बाधा को निर्मूल करने का संकल्प जिसके हृदय में है, उसके लिए हर बलिदान करने को जो तत्पर है, वही वेदाभिलाषी वेद को, उसके अर्थ और मूल्य को समझने में समर्थ हो सकता है, उसीके हृदय में वेद प्रकट होता है। हम उसे आर्य कहते हैं। वेद उसे पूर्ण मानव की संज्ञा प्रदान करते हैं। जब वेद कहता है कि संपूर्ण विश्व को आर्य बनाओ तब ऐसे व्यक्ति-विशेष की ओर ही उसका इंगित होता है। यही वह महानता है, दिव्यता है, हृदय की पवित्रता है, चेतना की विशालता है, मानसिक ज्योतिर्मयता है जिसकी ओर मानव आत्मा आकर्षित होती है और उसे जीवन में अपनाने की, स्वाभाविक वस्तु बनाने की अभीप्सा अपने हृदय में तथा अपने यंत्रों के स्वभाव में देखने की इच्छुक है।

उपर्युक्त स्थिति प्राप्त करना मनुष्य के लिए सरल, सहज, स्वाभाविक नहीं, क्योंकि इसके लिए तप-त्याग,

संयम तथा ईश्वर में अटूट आस्था का होना अनिवार्य है और तप-त्याग, संयम से युक्त जीवन अभी संसार में मानव के लिए स्वाभाविक वस्तु नहीं बना है। अभी भी उसकी वृत्तियाँ निम्नगामी हैं, उसकी जीवन-धारा अधोमुखी है। कारण, वह बहिर्मुखी मन तथा सीमित अहंभाव के द्वारा प्रभावित रहता है। उसका जीवन इन्हीं के द्वारा शासित है। उसने अपने-आपको इनसे पृथक् करना नहीं सीखा और कोई भी व्यक्ति, जिसने अपने-आपको प्रकृति से पृथक् नहीं किया, जिसकी स्थिति आत्मा में नहीं है, वेद को समझने की योग्यता से दूर है। जो समाज आत्म-संयम को अस्वाभाविक मानता है, जो कि आत्म-अनुसंधान की प्रथम शर्त है, वह कभी आध्यात्मिक जीवन यापन नहीं कर सकता। उसका जीवन-आंगन कभी आत्म आलोक से आलोकित नहीं हो सकता। यही कारण है कि दूसरी जातियों में वैदिक शिक्षा का प्रचार, उन पर इसका प्रभाव इतना कम रहा।

लेकिन क्या हम सोच सकते हैं कि जिस जाति के पास अपनी अमूल्य निधि है, अपार ज्ञान-राशि है, वह जाति अपने स्तर से कैसे पतित हुई, कैसे लुप्त हुई हमारी क्षमता, हमारी राष्ट्रीय उच्चता, जहाँ सारे संसार का हम मार्गदर्शन करते थे, दूसरी जातियों को जीवन जीने की कला सिखाते थे, वहीं आज हम उनका अनुकरण करने में अपना सौभाग्य समझते हैं। उनकी भाषा को सर्वोच्च मान प्रदान करते हैं।

अपने बच्चों को उनके द्वारा शिक्षित करने में गौरव अनुभव करते हैं। क्या कारण है चेतना के इस पतन का, जीवन-स्तर के गिरने का ! कहाँ है वह अज्ञान-ग्रंथि ! कैसे हमें अंधता ने ग्रसित किया, लक्ष्य हमारी दृष्टि से ओझल हो गया ! कैसे हम परतंत्र हुए ! कैसे हमारा सब लुटा ! कहाँ है इसका प्रवेश-द्वार !

हे भारत ! भारतीय प्रबुद्ध जन-मन ! तेरी भूल यही है कि जो सर्वोच्च ज्ञान तुझे प्रदान किया गया था, तेरे पूर्वजों ने जो निधि तेरे लिए संजो कर रखी थी, उसे व्यवहार में नहीं लाया, अपने जीवन में चरितार्थ नहीं किया। उसे एक आदर्श के रूप में तूने सजा कर रख छोड़ी। वह अमूल्य निधि वेद है, उसका ज्ञान, उसका प्रकाश है। वेद व्यवहार की वस्तु है, वेद जीवन से संबंधित है। वेद जीवन सिखाता है, वेद मृत्यु पर विजय है, विजय प्रदान करता है। वेद संपूर्ण मानव-जाति की सब समस्याओं का चरम समाधान है, समाधानों की निधि है। ऐसी कोई वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, जातीय, वर्गीय, भौतिक तथा आध्यात्मिक समस्या नहीं जिसका समाधान वेद में नहीं, जिसका हल वेद प्रदान न कर सके। वेद जीवन में चलने के लिए चक्षु है, प्रगति के लिए विज्ञान है। वेद शक्ति है, जीवन है। वेद के सहारे हम भव-सागर को तर सकते हैं। उसके जल को अमृत में बदल सकते हैं। वेद संजीवनी है, हम अपने मरण-धर्मा अंगों को अमर बना सकते हैं। वेद चेतना

है, हम वेद के सहारे जड़-पदार्थ में चेतना जगा सकते हैं उसे रूपांतरित कर सकते हैं। वेद दृष्टि है जिसे प्राप्त कर, हम आकारों में निराकार ईश्वर के दर्शन कर सकते हैं, सृष्टि के रहस्य जान सकते हैं।

* * *

आर्य तो कोई भी कहला सकता है, हमें सच्चा आर्य बनना है। हम आर्य व्यक्ति के सच्चे होने पर इसलिए बल देते हैं कि अगर आर्य व्यक्ति जरा भी अपने स्तर से, शास्त्रोक्त आर्य-चरित्र से नीचे गिरता है तो उससे समाज के स्तर के पतन की संभावना उत्पन्न हो जाती है। यही कारण है कि आर्य जाति को जीवन तथा कर्मों में अत्यधिक सचेतन रहने की आवश्यकता है।

* * *

अगर वेदों का अध्ययन करने के पश्चात् भी हमारा निवास निम्न चेतना में है, सांसारिक पदार्थों में मोह है, अहंमय तथा इंद्रिय जीवन को प्राथमिकता देते हैं, भोगों में स्पृहा है, तो समझ लें हमने वेदों को नहीं समझा, पुस्तक के पन्ने पलटते रहे। वेदों में प्रवेश संभव नहीं हुआ, उनकी गहराई में डुबकी नहीं लगायी। वेद-विग्रह की आत्मा का स्पर्श नहीं पाया, उसके ज्ञान से, उसकी ज्योति से वंचित रहे।

सामान्य जीवन-स्तर की बात छोड़ें, बौद्धिक स्तर पर भीं हम वेद को नहीं समझ सकते। वेद रूपक की भाषा में अवतरित हुआ है। वस्तुएं, घटनाएं, शक्तियाँ प्रतीकों में दी गई हैं। ये प्रतीक गुह्य हैं। चेतना के विभिन्न स्तरों पर — उनके ज्ञान की ज्योति प्रतीकों के द्वारा अभिव्यक्त है। हम अपनी चेतना की एक विशिष्ट स्थिति में, जिसमें एकाग्रता तथा उद्घाटन अनिवार्य तथा अपेक्षित स्थिति है — उन स्तरों पर प्रवेश पा सकते हैं, उसमें उठ सकते हैं। वेद सर्व साधारण के स्तर की वस्तु इसलिए नहीं हो पाया क्योंकि इसे प्राप्त करने में, जिस स्तर पर वेद उपलब्ध होता है, उस स्तर विशेष पर उठने में, हमें अपने जीवन तथा चेतना-स्तर को ऊँचा उठाना होता है। जो अपने आपमें एक भागीरथ पुरुषार्थ की मांग करता है। यह सर्व विदित तथ्य है कि कोई भी व्यक्ति जिसका आचरण सत्यमय नहीं, शुद्ध नहीं, संयमित नहीं, जो ईश्वर में आस्थावान नहीं, जिसने ईर्षा, द्वेष, दम्भ तथा क्रोध आदि का त्याग नहीं किया और अपने स्वभाव में विनम्रता को, कृतज्ञता को, मधुरता को प्रथम स्थान नहीं दिया, जो सत्य के पालन तथा असत्य के त्याग में दृढ़ संकल्पित नहीं है-- वेद को धारण करने में समर्थ नहीं हो सकता। रेगिस्तान में रात बिताने वाले राही के लिए सुबह सूर्योदय के स्वागत में एक सुंदर सुमधुर सरोवर के

निर्मल जल में स्नान कर सुसज्जित होना असंभव है। वेद का अवतरण संभव बनाने के लिए हमारा आंतरिक तथा बाह्य जीवन-स्तर, आत्म-सत्य से ओत-प्रोत, आध्यात्मिक नियमों से चालित होना चाहिए। श्रेष्ठ कर्मों तथा उत्तम भाव-विचारों से युक्त, श्रेय पथ पर आरूढ़ करने वाले अभ्यासों से भरपूर होना अनिवार्य है। हमें सावधान होना है कि कहीं हमारी वृत्तियाँ निम्नगामी तो नहीं, हमारे अंदर असुया, द्वेष तथा बदला लेने की भावना तो नहीं है। जब हमारा हृदय सब प्रकार शुद्ध हो जाता है, हम प्राणिमात्र से प्रेम करते हैं, सबका मंगल चाहते हैं, परोपकार की भावना हमारे अंदर जाग जाती है, चेतना मानव स्वभाव की तुच्छता, लघुता तथा स्वार्थपरता को लांघ जाती है, हमारा जीवन एक यज्ञ का रूप धारण कर लेता है, "सर्वे भवन्तु सुखिनः" हमारी आत्मा के उद्गार हो उठते हैं, हृदय की उस विशालता में जहाँ सब अपने हैं, "मम आत्मा सर्वभूतात्मा", और जहाँ सारा संसार मेरा अपना परिवार है, "वसुधैव कुटुम्बकम", वेद हमारे अर्थात् मानव हृदय में अवतरित होता है। हमारी आत्मा उसे विनीत भाव में, प्रसन्न मुद्रा में ग्रहण करती है और जीवन के मूल में, बीज रूप में उसका रोपण करती है।

* * *

आर्या भवेम

मानव की वर्तमान मानसिक स्थिति और उसके जीवन तथा आचरण के विषय में हम सभी सुपरिचित हैं। संस्कृति और चारित्रिक-स्तर पर बहुत अधिक पतन दिखायी दे रहा है। किसी देश, जाति या राष्ट्र की महानता, उसकी संस्कृति की उच्चता से, उसके चरित्र की महानता से आंकी जाती है। उच्च चरित्र, संस्कृति का ही द्योतक, उसका व्यावहारिक रूप होता है। देश की आत्मा की अभिव्यक्ति ही हर देश की संस्कृति होती है जो उसके निवासियों के जीवन में, उनके चरित्र के गठन में झलकती है। जब किसी जाति विशेष के अंदर उसके आचरण में महान चरित्र देखते हैं तब वास्तव में यह उस देश की संस्कृति की ही छाप होती है जो उस देश की आत्मा की अभिव्यक्ति होती है। उदाहरार्थ, आत्मा के दिव्य गुणों को, उसके स्वभाव को जीवन में उतारना, कर्मों और भावनाओं में व्यक्त करना भारतीय संस्कृति रही है। जिसकी झांकी हमें हमारे पूर्वजों के जीवन में दिखायी देती है।

किसी व्यक्ति के स्वभाव में, दिव्य गुणों को – सत्य, दया, क्षमा, प्रेम, उदारता, परोपकार आदि की दिव्य भावना को देखकर हम कह सकते हैं, वह आर्य है। उसका स्वभाव आर्य संस्कृति की उपज, उसकी स्वाभाविक चरितार्थता है। जिसका हृदय शुद्ध है, किसी के प्रति दुर्भावना नहीं, जिसके

अंदर काम, क्रोध, लोभ आदि नहीं, प्राणिमात्र से प्रेम करता है, उनके सुख की चिंता में अपना सुख बलिदान कर देता है, जिसका अपने-आप पर पूर्ण संयम है, जो सर्वदा शांत, धैर्यवान, क्षमावान है, प्रसन्नचित है, भागवान में आस्था, उनकी कृपा में अटूट विश्वास रखता है, अपने आत्म-बल और संकल्प बल में दृढ़ रहते हुए जीवन पथ पर गौरवपूर्ण पग बढ़ाता है, दया-धर्म, नीति-न्याय मानों उसके प्राण हैं, मानव मात्र के सुख और उसकी प्रगति की चिंता जिसके हृदय को कभी नहीं त्यागती, जो उसके आत्म-विकास के प्रति सजग है, जगत् में आत्मा के धर्म और सत्य के शासन की स्थापना जिसका लक्ष्य है, मोह-आसक्ति से ऊपर, आत्म-चेतना में स्थित, ईश्वर के विधान के प्रति पूर्ण समर्पण ही जिसका जीवन है, समर्पण की पूर्णता में ही जो जीवन की सफलता, सार्थकता मानता है, वही सच्चा भारतीय है। भारतीय संस्कृति का आदर्श प्रतिनिधि है। हमारे शास्त्रों में इन्हीं गुणों से युक्त मनुष्य को आर्य कहा है।

हमें आर्य कहलाकर संतुष्ट नहीं होना चाहिये। हमें आर्य बनना है। शब्द के सही अर्थ में आर्य स्वभाव को धारण करना है। अपना आदर्श जगत के सामने रखना है। उसके पश्चात् ही हम विश्व से आर्य बनने की आशा कर सकते हैं। सारा संसार देखे, अनुभव करे, उसे विश्वास हो कि हमने आर्य चरित्र को धारण कर अपनी समस्याओं पर विजय प्राप्त की है। संसार स्वयं

समझे कि वह भी, व्यक्तिगत तथा सामुहिक सभी समस्याओं का समाधान, आर्य व्यक्ति के चेतना स्तर पर उठ कर प्राप्त कर सकता है।

आर्य बनने के लिये हमें अपने अंदर आर्य-चरित्र का निर्माण करना होता है। वह एक कष्ट-साध्य कर्म है, तपस्या का मार्ग है, जो आर्य-आदर्शों के प्रति बलिदान की मांग करता है। इस मार्ग के अनुयायी वे ही व्यक्ति होते हैं, जो ईश्वर में आस्था रखते हैं। ईश्वर का आदेश पालन ही जिनके जीवन का आधार, उसका मूल-मंत्र है। वे ही मनुष्यों में आर्य अर्थात् श्रेष्ठ कहलानें के अधिकारी होते हैं। आर्य व्यक्ति संसार के लिए जीता है। इसके उत्थान में हर सुख का स्वाहा उसे प्रसन्नता प्रदान करता है। उसका जीवन संसार के मंगल के लिए यज्ञ रूप होता है। संसार के तुच्छ भोगों में उसकी रुचि नहीं जाती। उसके जीवन का एक ही लक्ष्य होता है, प्रभु प्रसन्नता। एक ही प्राप्तव्य, परम सत्य। एक ही अभिलाषा, सृष्टि में सृष्टिकर्ता का संकल्प सर्वत्र अभिव्यक्त हो, विजयी हो। उसे ही समर्पित रहते हुए मानव सुख पूर्वक पूर्ण आयु का भोग करें। अपने अन्तर्निहित लक्ष्य की सिद्धि में सर्वांगीण सफलता लाभ करें। यही अमरता का पथ है। प्रभु को समर्पित होकर हम संसार में रहते हुए ही अमृत-सिंधु में प्रवेश के अधिकारी होते हैं।

इस प्रकार अगर हम वैदिक शिक्षा की गहराई में प्रवेश करें तो अवश्य हमारी चेतना में उत्थान आएगा। हम

मनुष्य के सामान्य चेतना-स्तर से ऊपर उठने में समर्थ होंगे। मानव चेतना में यह उत्थान ही उसके अंदर आवश्यक परिवर्तन लाता है। उसे देव-मानव में रूपांतरित करता है। मानसिक चेतना की परिधि का अतिक्रमण कर, अहंमय सीमित चेतना से ऊपर उठकर हम देव-मनुज बन सकते हैं। देव-मनुज अर्थात् उच्च, आध्यात्मिक चरित्र से युक्त व्यक्ति ही आर्य कहा जाता है। विचार के इस स्तर पर खड़े होकर हमें देखना है कि हम आर्य व्यक्तित्व से, आर्य चरित्र से, आर्य कहलाने के अधिकार से, कितने समीप अथवा दूर हैं। अगर हम निष्पक्ष होकर अपनी स्थिति का अवलोकन कर सकें तो यह अपने आपमें एक महान उपलब्धि होगी। विश्व को नहीं उससे पहले, स्वयं को सच्चा, सही अर्थ में आर्य बनाने का प्रयास करना चाहिए। इस दिशा में पुरुषार्थ करने से ही हम महर्षि के प्रसाद के भागी बनने के अधिकारी होंगे। अगर हम आज इस अभियान का प्रारंभ कर सकें तो यह लक्ष्य-सिद्धि की दिशा में एक सुनिश्चित पग होगा।

* * *

आर्य व्यक्तित्व

वेदाध्ययन में हम अन्य मंत्रों के साथ इस मंत्र पर आते हैं, 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'। क्या हमने कभी सोचा है कि परमात्मा की इस वाणी में उनका क्या भाव निहित है, इस मंत्र का क्या अर्थ है, परम चैतन्य के किस स्तर से यह आलोकित है, किस स्तर की अभिव्यक्ति है ! निस्संदेह परमात्मा की हर वस्तु, हर स्थिति, उनका हर शब्द, हर आदेश, हर इंगित दिव्य होता है, दिव्यता से ओत-प्रोत होता है। आत्म-दिव्यता की अभिव्यक्ति के लिए एक प्रयास होता है। जिसके द्वारा मनुष्य जाति जीवन-मार्गों पर निर्भ्रांत रूप से अग्रसर हो। अज्ञान से बाहर आये, आत्म-ज्ञान में निवास संभव बनाये, विचारों की सीमा से ऊपर उठे, उसके दृष्टिकोण में विशालता प्रवेश करे, वह अपने चरित्र में देवत्व को चरितार्थ करे। भीतर आत्मा का अनुसंधान कर, शास्त्रोक्त मानव-जीवन-लक्ष्य के विषय में सचेतन बने। हर व्यक्ति अपने आत्म-कल्याण के साथ-साथ दूसरों के आत्म-कल्याण में भी हाथ बंटाये। सब परस्पर प्रेम से मिलकर रहें, उन्नति करें, अपनी सत्ता तथा जगत सत्ता के मूल सत्य को प्राप्त करें, उसमें निवास स्थायी बनायें। आत्म-साक्षात्कार को जीवन-लक्ष्य के रूप में निर्धारित कर, सृष्टि के उद्गम से – जो कि एक अनंत अमृतमय दिव्य तत्व है – तादात्म्य लाभ करें। आत्म-आनंद का उपभोग संसार में संभव हो। सब

.3

सुखपूर्वक अपने-अपने कर्तव्य का पालन करते हुए, परम सत्य को विचार, भाव तथा कर्मों में चरितार्थ करें।

वेद उन सब की आत्मा में अपने आपको प्रकट करता है, जो सब प्रकार शुद्ध हैं, भीतर-बाहर पवित्र हैं, मानव मात्र के प्रेमी हैं। जिनके हृदय सब के लिए मंगल-भावनाओं से भरपूर हैं। आत्म-कल्याण की अभिलाषा से पूर्ण हैं। परमात्मा की ओर अभिमुख रहना ही जिनका स्वभाव बन गया है। जो सृष्टि को उनके आत्म-संकल्प की अभिव्यक्ति के रूप में देखते हैं और इसे उनके आत्म-आनंद से परिप्लावित करना ही जिनके जीवन का लक्ष्य है, एक मात्र प्रयोजन है।

आएँ, हम अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करें। बौद्धिक ज्ञान से ऊपर उठकर, जाति, धर्म और वर्णों की परिधि से बाहर आकर ही हम स्तंभित कर देनेवाले इस मंत्र के भावार्थ को हृदयंगम करने में समर्थ हो सकेंगे।

सबसे पहले हमें इस दिशा में विचार करना है कि अगर आर्य शब्द के प्रयोग में इस मंत्र का इंगित किसी विशेष वर्ग, जाति, समाज अथवा संप्रदाय से होता तो इसमें कुछ भी महानता नहीं थी। यह किसी उच्च-स्तरीय चेतना की अभिव्यक्ति न कही जाती। प्रबुद्ध जन इस ओर ध्यान न देते। उनके मन, बुद्धि, हृदय इसे सम्मानपूर्वक ग्रहण न करते। अग्नि को साक्षी देकर इस आदर्श वाक्य की, इस महामहिम मंत्र की चरितार्थता में जीवन अर्पण कर देने की कठोर प्रतिज्ञा न करते।

जो वेद हमें एक ओर यह कहता है कि सत्य को ग्रहण करो, आत्मा में निवास संभव बनाओ, सब में परमात्मा के दर्शन करो, मानव-मात्र प्रभु की संतान है अतः सबसे प्रीतिपूर्वक, दया-धर्म तथा भ्रातृभावना के साथ व्यवहार करो तथा दूसरी ओर, इस सृष्टि का आदि मूल परमात्मा है, वह सबके हृदय में स्थित है, उसकी प्राप्ति ही संसार में मानव जीवन का, मानव-आत्मा के पृथ्वी पर अवतरण का उद्देश्य है, वही वेद हमें आदेश प्रदान करता है कि संपूर्ण विश्व को आर्य बनाओ। यहाँ, इस संदर्भ में वेद हमें दया-धर्म, पारस्परिक प्रेम तथा आत्मा की चेतना में, उसकी विशालता में निवास का पाठ पढ़ाने के पश्चात् भी– जबकि यह शिक्षा अपने आपमें एक महान वस्तु है, उच्चतम आदर्श है – संतुष्ट हुआ प्रतीत नहीं हो रहा है। संसार में मानव को श्रेय पथ पर अग्रसर होने के लिए, आत्म-कल्याण साधित करने के लिए, केवल एक मात्र वेद ही समर्थ है, कारण वेद सत्य विद्याओं का संग्रह है। वही वेद हमें कुछ और सिखाना, एक अन्य लक्ष्य हमारे सम्मुख रखना चाहता है। वेद हमें आदेश दे रहा है और वह भी इतने सुस्पष्ट शब्दों में कि जहाँ किसी प्रकार के संदेह की, भूल धारणा की संभावना ही नहीं है। "कृणवन्तो विश्वमार्यम्"।

मंत्र अत्यधिक स्पष्ट है, संपूर्ण विश्व को आर्य बनाओ। हम मानते हैं यह परमात्मा की वाणी है, उनका संकल्प है।

वे ही विश्व को आर्य पुरुष की चेतना के स्तर पर स्थित देखना चाहते हैं। संपूर्ण विश्व आर्य होना ही चाहिए और वह अवश्य होगा। कब होगा, कैसे होगा यह अभी भविष्य के गर्भ में सुरक्षित है।

अपनी सीमित बुद्धि से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वेद के इस मंत्र का भाव अवश्य किसी समाज अथवा संप्रदाय से नहीं है। वैदिक शिक्षा के अनुसार गठित चरित्र से युक्त, वेदोक्त शिक्षा जिस स्तर विशेष की अभिव्यक्ति है, आत्म-चैतन्य के उस स्तर-विशेष पर निवास करने वाला, वेद के उद्गम से जिसका सतत तादात्म्य है, उसके प्रकाश, ज्ञान तथा चेतना की त्रिवेणी में जिसके मन बुद्धि हृदय नित स्नान करते हैं, ऐसा पुरुष-श्रेष्ठ, महामानव, मानसोत्तर स्तरों पर विचरण करने वाला ही आर्य कहलाने का अधिकारी है।

हमें मंत्र के भाव को सामान्य चेतना-स्तर पर लाने का प्रयास नहीं करना चाहिए और दूसरे धर्मों के समक्ष एक नये धर्म के रूप में – भले ही अपने तर्क की पुष्टि के लिए हम इसे प्राचीनतम कहें – प्रस्तुत नहीं करना चाहिए। आर्य शब्द का भाव, उसका अंतर्गर्भित अर्थ, प्रचलित कहे जाने वाले धर्म, मतों, पंथों, रूढ़ियों से कहीं अधिक श्रेष्ठ, उच्च्च तथा गहन है। किसी भी धर्म को मानने वाला व्यक्ति क्षण भर में अन्य धर्म का अवलंबी बन सकता है, कोई भी भाई चाहे वह मुस्लिम है अथवा ईसाई जब चाहे हिन्दू बन

सकता है, लेकिन ध्यान रहे, एक मानव दूसरे क्षण अतिमानव नहीं बन सकता। कोई व्यक्ति जब चाहे आर्य नहीं बन सकता, और अगर हम कहें कि वह बन सकता है तो इसका अर्थ है कि हमने अभी तक आर्य शब्द के अर्थ को, उसमें निहित भाव को भली-भांति, उसकी गहनतम गहराई तक नहीं समझा है। आर्य अर्थात् वह व्यक्ति जिसके जीवन-कर्म तथा विचार-भाव का स्तर आध्यात्मिक चेतना की अभिव्यक्ति है, जिसका निवास आत्मा की विशालता में है, जो आत्मा की दृष्टि से जगत को देखता है, संसार में भगवान का यंत्र होकर जीवन यापन करता है, उसकी चेतना की उच्चता तथा विशालता सामान्य चेतना का मनुष्य, जो अपने अंदर सीमित है, अपने लिए ही जीता है, धारण नहीं कर सकता। हमें विकास-क्रम की सीढ़ियों पर चढ़ना होता है, अपनी प्रकृति में मंथन करना होता है, अपने अंदर अमृत का अनुसंधान करना होता है, अपने जीवन को, अपनी दृष्टि को, अपनी चेतना को आत्मा के आलोक से आलोकित करना होता है। तभी यह महान् कार्य संभव होता है, हमारा निवास उस स्तर पर होता है जहाँ आर्य कहलाने वाला व्यक्ति विचरण करता है, जो उसका स्वाभाविक स्तर होता है। यह एक कष्टसाध्य आरोहण है। हमें कठोर तपस्या की घड़ियों में से गुजरना होता है। तत्पश्चात् ही हमें आर्य पुरुष की ज्योतिर्मय मुक्त चेतना की उपलब्धि होती है।

जहाँ समस्त विश्व को आर्य बनाने के प्रयास की बात है, वहाँ आर्य शब्द उस भाव का द्योतक है जो सीधा आत्मा की अभिव्यक्ति है, आत्मा को चरितार्थ करता है। अगर हम इसे साम्प्रदायिकता अथवा धार्मिकता के रूप में ग्रहण करें तो यह एक भयंकर अहंकार की अभिव्यक्ति का रूप होगा। आज संसार एक विशेष काल में प्रवेश कर रहा है। पृथ्वी पर अतिमानसिक चेतना का अवतरण संभव हुआ है। सभी धर्मों में कुछ गहरे चिंतक जन्म लेंगे और ले रहे हैं। उन सभी व्यक्तियों को सचेतन होने की, धार्मिकता के वर्तमान स्वरूप को पुनः एक बार निरीक्षण करने की आवश्यकता है जो एक ओर साम्प्रदायिकता को धार्मिकता समझने की भूल कर रहे हैं और दूसरी ओर धार्मिकता की उन दीवारों में बंद हैं, जो दीवारें हमारे सीमित अहं के द्वारा निर्मित हैं। कारण, अतिमानसिक चेतना की अभिव्यक्ति संकीर्णताओं के द्वारा निर्मित सीमाओं से बाहर आने की मांग करती है, मानव-चेतना-परिधि के अतिक्रमण की अनिवार्यता पर बल देती है। सांप्रदायिकता का समय उठ गया है। मानव एक आध्यात्मिक चेतना में, जिसे श्रीअरविन्द ने अतिमानस कहा है – प्रवेश करने जा रहा है। जिसके फलस्वरूप उसके चिंतन की धारा विस्तृत होगी। एक असीम क्षितिज उसके सम्मुख खुलेगा। जिसमें वर्तमान धार्मिकता तथा जातीयता का भाव नया स्वरूप ग्रहण करेगा, मानव चिंतन तथा जीवन आत्मा की विशालता से

ओत-प्रोत होगा। आत्म-सत्य ही उनका प्रेरक होगा। हमारे हर विचार तथा योजना के पीछे मानव-एकता का भाव सर्वोपरि होगा। मानव-जाति एकता के सूत्र में बंधेगी। मिलकर उन्नत होगी। मिलकर विकास-पथ पर अग्रसर होगी। स्थायी सुख जिसका स्वर्णिम परिणाम होगा। आगामी युग का मानव अपने चिंतन में आत्मा की विशालता को प्रतिबिम्बित देखेगा। उसका दृष्टिकोण वैश्विक चेतना से ओत-प्रोत होगा। अतिमानस मानव-जीवन तथा चेतना को अपने हाथों में लेगा, आत्म-ज्योति में उनका रूपांतरण संभव बनायेगा। अतिमानस भागवत चेतना है। अतः जगत में उसकी विजय, उसकी सफलता, मानव जाति पर उसका प्रभाव सुनिश्चित है। हमें चाहिये कि हम जागें। अतिमानसिक चेतना की ओर उद्घाटित रहें। हम देखेंगे कि सभी धर्म पदार्थों में निहित ऋतम् रूपी सूर्य की किरणें हैं। हमें किरण के प्रकाश में बैठकर ही संतुष्ट नहीं होना चाहिये। हम आत्मा की भांति ऋतम् रूपी सूर्य का अनुसंधान करें, उसे प्राप्त कर, उसके प्रकाश में जीवन-मार्गों पर अग्रसर हों। उसका सुफल प्राप्त करें। साम्प्रदायिकता को उतना ही महत्व प्रदान करें जितना सामूहिक जीवन के लिए अनिवार्य है। वर्तमान धार्मिकता के खोखलेपन को समझें। उससे संतुष्ट न हों। धार्मिकता हमें जिस दिव्य पदार्थ के लिए तैयार करती है उसकी खोज को जीवन-लक्ष्य के रूप में चुनें। उसे प्राप्त कर कृतकृत्य बनें।

हम विद्यालय में प्रवेश के पश्चात् , तुरत अध्यापक नहीं बन जाते। एक दीर्घ, श्रमपूर्ण अध्ययन-काल में से हमें गुजरना पड़ता है। जो व्यक्ति मनुष्य के सामान्य चेतना-स्तर से ऊपर उठ गया है, व्यक्तित्व की सीमित परिधि का अतिक्रमण कर चुका है, उच्च चेतना-स्तर पर जिसका निवास है, उसका ज्ञान, उसका प्रकाश, उसकी शांति-समता, जिसके जीवन का अंग बन चुकी हैं, जिसकी चेतना की विशालता में सारा विश्व एक परिवार बनकर समा गया है, जो सर्वत्र भगवद् दर्शन करता है, सत्य, प्रेम, दया की मूर्ति है, नील-कमल के समान जिसके व्यक्तित्व से आत्मा का माधुर्य भरा सौरभ झरता है, दिव्य प्रेम का उत्स जिसके हृदय में सतत प्रवाहित है, जो धरती को भगवान का लीला धाम लखकर चित्त में प्रसन्नता अनुभव करता है, जग मंगल हित अपने सब सुखों का स्वाहा करने को उद्यत रहता है, वह मानव-मात्र का प्रेमी, सबका सखा, सहायक, जिसपर हर आत्मा विश्वास करती तथा जिसे अपना समझती है, आर्य कहलाता है।

आर्य जाति पृथ्वी पर सदैव मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ रही है। कारण उसके जीवन का स्तर उच्च, आध्यात्मिक चेतना की अभिव्यक्ति रहा है। नर-पुंगव आर्य पुरुष देवोपम चरित्र से गठित थे, उनका व्यक्तित्व पृथ्वी पर सूर्य के समान द्युतिमान था। ये ऋषि थे, राजर्षि थे। वैदिक संस्कृति के पुरोधा, ये ही हमारे पूर्वज थे। जिनका वंशज होने का

सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है। कोई भी जाति, वर्ग, समुदाय जो अपने जीवन में आध्यात्मिकता को चरितार्थ करेगा, अपने स्तर को ऊँचा उठा सकता है। ऊँचा उठना, प्रगति करना, विकास को अधिक से अधिक पूर्ण बनाना मानव जीवन का वेदोक्त उद्देश्य है। व्यक्ति का आध्यात्मीकरण ही सही अर्थ में उसे आर्य बनाता है। हमें यह मानकर चलना है कि कोई व्यक्ति, कोई समाज, कोई धर्म अपने आपमें पूर्ण नहीं है, दोषरहित नहीं है। वह अभी अपनी पूर्णता पर नहीं पहुँचा है। विकसित होना इस सृष्टि का स्वभाव है और जब हम विकास की दूसरी, अगली अवस्था में उठते हैं तभी पहली अवस्था की अपूर्णता, उसकी सीमाएं स्पष्ट गोचर होती हैं, उससे पहले नहीं।

संसार पूर्णता की ओर बढ़ रहा है। सब कुछ विकास कर रहा है। दूसरी स्थिति में उठकर ही हम समझते हैं कि हमारा दृष्टिकोण कितना सीमित, कितना भ्रांतिपूर्ण था, हम प्रथम स्थिति को ही अंतिम समझ रहे थे। अपूर्ण को ही पूर्ण मान रहे थे। हमें ऐसा आदर्श उपस्थित करना चाहिए कि समाज का जो भाग आर्य जाति के गुण, कर्म और स्वभाव से बाहर है, वह भी हमारे व्यवहार और चरित्र को देखकर, उससे संतुष्ट होकर, उसे मानव के सामान्य स्तर से ऊँचा, भव्य, अधिक आदर्श-पूर्ण अनुभव कर अपनाने के लिए भीतर से प्रेरित हो।

हमें यह नहीं समझना है कि जो हम जानते हैं वही सब कुछ है। इससे परे जानने के लिए कुछ और नहीं है, न हो सकता है, अथवा जो हम नहीं जानते हैं उसका अस्तित्व ही नहीं है। धार्मिक तथा सांप्रदायिक स्तरों पर भी हमें विनम्र रहना है, कट्टर नहीं बनना है। कट्टरता आसुरिक भाव है – "हमारा धर्म अथवा संप्रदाय ही सर्वश्रेष्ठ है, यही सत्य है, हमारे आचार्य, प्रवर्तक, पैगम्बर अथवा तीर्थंकर जो कह गये वही सत्य है, सत्य उतना मात्र ही है, उससे परे कुछ नहीं, अगर हो भी तो हम उसे नहीं मानेंगे, जो मार्ग वे दर्शा गये वही मार्ग है, जो गंतव्य बता गये वही गंतव्य है, संसार को देखने का जो दृष्टिकोण उन्होंने प्रदान किया है वही अंतिम, उच्चतम तथा सर्वमान्य है," – हृदय के भावों की यह कट्टरता, हमारे मानसिक तथा बौद्धिक विकास में, आत्मा के विकास में, मानवता के लिए मुक्ति-द्वार उद्घाटित करने में, बाधा उपस्थित करती है। यह मानव-अहंकार का अंधा हठ है। जो उसे कभी भी अपनी क्षुद्र, अंधियारी कोठरी से बाहर नहीं आने देता। उसी में चक्कर काटते रहने के लिए बाध्य किये रहता है।

आज का प्रबुद्ध मन इस विचार के पीछे अंधता के साथ दंभ की छाया भी देख रहा है। यह एक अति-सीमित दृष्टिकोण है, जिसमें आध्यात्मिक ज्ञान का सूर्य तो क्या उसकी एक किरण भी अपने पूर्ण प्रकाश के साथ नहीं समा सकती। नई चेतना जो कि संसार में अवतरित हुई है और

इसे एक उच्चस्तरीय आलोक में उठाना चाहती है, हमें इस प्रकार की सभी सीमाओं से बाहर देखना चाहती है, यह नई चेतना अतिमानसिक चेतना है। श्री अरविंद और श्री माताजी की संयुक्त तपस्या के फलस्वरूप इसका अवतरण पृथ्वी पर संभव हुआ है। शीघ्र ही आगामी शताब्दियों में मानव तथा उसके जीवन का रूपांतर संभव हो सकेगा। उसके मन की भांति उसका शरीर भी सत्ता के अन्य भागों के साथ आत्मा की दिव्यता में भाग लेगा और उसके द्वारा अपने आपको रूपांतरित करेगा। हमारी दृष्टि में मन की अपेक्षा शरीर अधिक अचेतन है। आत्मा की दृष्टि में दोनों उसकी अपनी अभिव्यक्ति हैं और वह सर्व समर्थ, सर्व शक्तिमान आत्मा, दोनों के द्वारा प्रकट हो सकता है। दोनों को अपनी दिव्यता में रूपांतरित कर सकता है। अपने मूल उद्गम के साथ तादात्म्य, उसकी दिव्यता में रूपांतर, संसार में सृष्ट वस्तुओं की अवश्यंभावी नियति है। भले ही आज यह बात हमारी समझ में नहीं आ रही है, विश्वास करना कठिन हो रहा है, किन्तु कल हम इसे स्पष्ट देखेंगे। यह सृष्टि-विकास-क्रम का अंतर्निहित सत्य है। जो बीज में है, एक दिन अवश्य प्रकट होगा।

पार्थिव अमरत्व का विचार नया नहीं है। हमारे शास्त्रों में ऋषि-मुनियों की अनुभूतियों के क्रम में इसका उल्लेख हमें मिलता है, "मृत्योर्माऽमृतंगमय" मानव आत्मा को लक्ष्य करके नहीं कहा गया। आत्मा तो अमृतमय है, वह तो अमर

है ही, बंधन हमारे मन का भ्रम है। यह मंत्र एक प्रार्थना है। इसमें मानव-चेतना अपनी संपूर्ण सत्ता के लिए प्रार्थना कर रही है। अपनी आत्मा की भांति वह अपने यंत्रों को भी दिव्यता में रूपांतरित देखना चाहती है। यही अमृत अर्थात् अमरता है। मानव आत्मा संसार में अपने विकास के लिए आती है। उसका विकास उसके यंत्रों पर – मनोमय, प्राणमय, अन्नमय पुरुषों पर निर्भर करता है। इनके बिना, इनसे पृथक् होकर वह अपना विकास साधित नहीं कर सकती। जब उसके यंत्रों का आत्मा की दिव्यता में दिव्यीकरण संभव हो जाता है, उसके अवतरण का लक्ष्य पूर्ण हो जाता है। वह पृथ्वी पर भागवत यंत्र के रूप में निवास करती है। प्रभु-संकल्प की चरितार्थता ही उसका कर्म, कर्म के पीछे उसका भाव होता है।

यह नई चेतना, जिसे हमने अतिमानसिक चेतना कहा है, युग-धर्म है, भागवत संकल्प की सीधी अभिव्यक्ति है। संसार को एक नई दिशा प्रदान करने के लिए, उसके विकास को एक नई दिशा में मोड़ने के लिए इसका अवतरण हुआ है। सृष्टि विकास-क्रम में नई वस्तुएं जन्म लेंगी, नये तत्व उद्भूत होंगे। मनुष्य नये रूप में, अपने सच्चे शास्त्रोक्त रूप में – हृदय में नया स्वभाव धारण किये – जीवन में आत्मा की दिव्यता को चरितार्थ करता हुआ संसार में विचरण करेगा। उसकी चेतना आत्म-ज्ञान के आलोक से आलोकित होगी, उसकी प्रकृति आत्म-सत्य से

ओत-प्रोत होगी, अंतर्निहित सत्य को चरितार्थ करने में पूर्णतः सफल होगी। अज्ञान-अंधकार की शक्तियाँ इस चेतना का प्रतिरोध करने में समर्थ नहीं हो सकेंगी, उनके भाव बदलेंगे, वे परिवर्तित होंगी। प्रभु को समर्पित होकर उनके यंत्र के रूप में संसार में कार्य करेंगी।

मानसिक चेतना का अतिक्रमण, आत्मा की विशालता में निवास, ऐसा कर्म है जो संसार के सम्मुख मुक्ति का मार्ग खोलने में, मनुष्य का मुक्त चेतना में निवास संभव बनाने में सब भांति समर्थ है। अपनी मानसिक परिधि में बंद रहते हुए हम कभी उस मुक्त नील नभ का दर्शन नहीं कर सकेंगे, जिसमें उठकर संसार सच्चे एवं स्थायी सुख की सांस ले सकता है। सीमाओं का अतिक्रमण अनिवार्य है।

* * *

देख रहा हूँ मनुष्य जाग रहे हैं। प्राचीनतम श्रुति-शास्त्रों की वाणी को पुनः सुनने में रस ले रहे हैं। उनमें श्रद्धा का उदय हो रहा है। वे मिश्रित सत्य से ऊपर उठना चाहते हैं। अपने हृदय-स्थित आत्मा को पूर्ण आवरण हीन देखना चाहते हैं। उसकी वाणी स्वयं सुनना चाहते हैं, किसी के द्वारा नहीं। व्यक्तिगत स्तर पर सीधा अपने लिए भागवत आदेश जानना चाहते हैं। एक ऐसा चेतना-स्तर उपलब्ध करना चाहते हैं जहाँ आत्मा की दिव्यता, उनके अज्ञानमय जीवन को आत्म-प्रकाश से परिपूर्ण कर दे।

एक सुझाव

वेद का प्रचार, अर्थात् वैदिक सिद्धांतों का, वैदिक शिक्षा का, प्रचार-प्रसार अपने आपमें एक उच्च, महान, दिव्य, आदर्श कर्म है और सृष्टिकर्त्ता परमात्मा चाहते हैं कि उनकी हर संतान यदि संपूर्ण रूप में न भी संभव हो, इसके एक पक्ष का ही – जो पक्ष कि समाज को उसके कर्तव्य के प्रति सचेतन करता है, जिसके फलस्वरूप सुख, शांति, समृद्धि, सामंजस्य में वृद्धि को प्राप्त होता है, गन्तव्य की ओर अग्रसर होता है – उस पक्ष का प्रचार अवश्य करें। शास्त्रों में इसे एक दिव्य कर्म की संज्ञा प्रदान की गई है और जो इसे करने के लिए प्रेरित हैं, इसके लिए अपने सर्वस्व का बलिदान करने के लिए उद्यत हैं उन्हें परमात्मा अपना यंत्र बनाने का परम सौभाग्य प्रदान करते हैं। ये प्रभु की प्यारी संतान कहलाती हैं, इनके ऊपर ही प्रभु आशीष, उनकी मंगलमयी करुणा स्वतः, सतत बरसती है।

इतने महान कार्य को करने का संकल्प जो भी लें, उन्हें एक बार अपनी आत्मा में अवश्य झांक लेना चाहिए कि क्या वे अपने भाव में पूर्ण निष्काम हैं, यह उनके अंदर आत्मा की प्रेरणा है, और वे इसके लिए सब कुछ करने को, सहने को, सब कुछ की बलि चढ़ाने को उद्यत हैं? वेद-प्रचार रूपी इस कर्म के पीछे आदर्श जितना महान है, मार्ग की कठिनाई भी उतनी ही भयंकर हो सकती है। हमें

हर चुनौती का सामना करने के लिए उद्यत रहना होगा। वेद के प्रचार का कार्य अपने आपमें उत्तम कर्मों में से है, यह भागवत कर्म है, हमारी आत्मा इसमें आनंदित होती है। उसका समर्थन हमें प्राप्त है। अतः हमें सुदृढ़ पगों से, निर्भय होकर आगे बढ़ना चाहिए। चाहे विरोध कितना भी हो, किसी भी स्तर पर हो, हमें अपने पथ से, जो कि वेद-विहित पथ है, पीछे नहीं हटना है, विचलित नहीं होना है। "कृणवन्तो विश्वमार्यम्" हमारा मंत्र है। यह सृष्टिकर्त्ता का आदेश है। हमें बिना किसी हिचकिचाहट के, लाभ-हानि की गणना के, एक कर्त्तव्य के रूप में, अपना कर्म करना है, करते जाना है।

किन्तु, जिस बात की ओर हमें विशेष ध्यान देना है, वह है – कि जिस शिक्षा को स्वयं हमने व्यवहारिक रूप प्रदान नहीं किया, अपने व्यवहार का विषय नहीं बनाया, अपने आचरण में नहीं उतारा, उसका उपदेश दूसरों को कैसे दे सकते हैं ! यह एक अशोभनीय कर्म सिद्ध होगा। अगर हम ऐसा करें, हमारी अनधिकार चेष्टा होगी और अनुभव कहता है कि ऐसी चेष्टा, ऐसा प्रयास विफल जाता है, उसका प्रभाव दूसरों पर नहीं पड़ता। उनको हम प्रभावित कर सकें इतनी शक्ति हमारे शब्दों में नहीं होती। वे खोखले होते हैं।

अगर हम सही अर्थ में महर्षि के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना चाहते हैं और उनके अधूरे कार्य को आगे बढ़ाना

चाहते हैं जो कि वैदिक शिक्षा का प्रचार, वेद की वाणी का, उसके संदेशों का प्रसार करना है, तो प्रथम हमें स्वयं एक आदर्श आर्य पुरुष का जीवंत उदाहरण संसार के सम्मुख उपस्थित करना होगा। तभी हमारे शब्दों में वह शक्ति आएगी जो मनुष्य को असत्य से ऊपर उठाकर, उसका निवास वैदिक सत्य में संभव बनाएगी।

वेद एक जीवंत ज्योति-स्तंभ है और अपनी ज्योति तथा चेतना को अस्तित्व में बनाये रखने के लिए उसके अंदर पर्याप्त शक्ति है। कितना भी भयंकर अंधकार जगत में छा जाये, कितने भी झंझावात आयें, कितने भी आक्रमण हों, उनका रूप चाहे जो हो, वेद अपने स्थान पर संसार में सदा सम्मानित, पूजित होता रहेगा। उसका स्थान सुरक्षित है। जब तक एक भी हृदय शुद्ध है, जन-मंगल-भावनाओं से भरपूर है, परमात्मा की ओर उद्घाटित है, तब तक वेद पृथ्वी के वातावरण में सदा प्रकाशमान रहेगा, अपनी ज्योति को मानव-चेतना पर विकीर्ण करता रहेगा।

शेष सब कुछ प्रभु-संकल्प पर निर्भर करता है। "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।" कर्म पर तेरा अधिकार है, कर्म कर । फल पर नहीं, उसकी इच्छा मत कर। आत्मा का समर्थन प्राप्त होने के पश्चात् शास्त्रों में विजय सुनिश्चित कही है। "सत्यमेव जयते" इसी विश्वास के साथ हम कर्त्तव्य-पथ पर आरूढ़ हों।

* * *

अगर हम विश्व को आर्य बनाना चाहते हैं, संसार में स्थित सभी जातियों को आर्य जाति में परिवर्तित देखना चाहते हैं, तो हमें अपना आदर्श उनके सम्मुख उपस्थित करना होगा। हमें एक ऐसा व्यक्तित्व अपने अंदर निर्माण करना होगा जिसमें शब्द के सही भाव में शास्त्रों में वर्णित आर्य कहलाने वाले व्यक्ति के सारे गुण हों। जगत श्रेष्ठ आर्य जाति में संसार के हर व्यक्ति के लिए, चाहे वह किसी भी देश अथवा जाति से संबंधित हो आत्मीयता का भाव रहता है। उसके व्यवहार में इतना आत्मिक प्रेम भरा होता है कि पृथ्वी का हर मनुष्य उसे अपना बंधु समझता है, अपना अंतरंग मानता है, उसपर पूर्ण विश्वास करता है। उसके वचनों में पूरी श्रद्धा होती है। आर्य व्यक्तित्व में एक ऐसा असाधारण आकर्षण होता है कि सामान्य जन उसे स्वतः समर्पित हो जाते हैं और उसके पथ-प्रदर्शन में चलने में ही अपना सब प्रकार का मंगल मानते हैं। व्यक्तित्व में यह आकर्षण उन सब व्यक्तियों में हर युग में पाया जाना संभव होता है, जिनका निवास आत्मा में होता है। जो आत्मा के चलाये चलते हैं। जिनके छोटे से छोटे व्यवहार में भी आत्म-सत्य, आत्म-प्रेम प्रतिबिम्बित होता है।

* * *

महर्षि दयानन्द
के प्रति
कृतज्ञता के दो शब्द

विश्व के इतिहास में कम ही ऐसे पृष्ठ हैं, और वे भी खोजने पर ही मिलते हैं, जिनमें कुछ ऐसा विलक्षण चारित्रिक वृत्त होता है जिसकी स्मृति मानस में सतत बनी रहती है। हृदय जिसकी ओर खिंचता रहता है। अंतर्सत्ता मुदित रहती है। आत्मा जिसके गुणगान करती थकती नहीं, हमारे चेतना-पट पर जिसकी छवि अंकित हो जाती है, जिसके सम्मुख हम सहसा अपने आपको झुका पाते हैं। यह छवि हमारे सम्मुख जीवंत हो उठती है। मानो कुछ कहना चाहती है। यह एक देव-तुल्य महापुरुष का व्यक्तित्व होता है, जिसका आधार एक महान, उच्च, अतुलनीय, अतिमानसिक चरित्र होता है। वह उन सभी के लिए आकर्षण का केंद्र होता है जो संसार में एक आदर्शमय जीवन जीने की अभिलाषा अपने हृदय में पोषित करते हैं। इन महापुरुषों में एक ऐसे अद्भुत व्यक्तित्व की झांकी मिलती है, जिस पर हठात् विश्वास करना, आज मानव-चेतना-स्तर पर दृष्टिपात् करने के पश्चात् कठिन होता है। केवल अपने लिए जीने वाले, अपने सुख-भोगों में ग्रस्त रहने वाले, कामनाओं से भरे अहंकार की काली छाया में बहने वाले सांसारिक जीवन के बीच में एक देदीप्यमान

सूर्य के समान व्यक्तित्व मानव-जीवन-मार्गों को प्रकाशित करता हुआ हम पाते हैं। जिसे अपनी चिंता नहीं, अपने सुख-ऐश्वर्य के लिए जीवन में कोई स्थान नहीं, मानो अपने- आपसे ऊपर उठ गया हो और संपूर्ण विश्व ही उसका व्यक्तित्व, उसका जीवन, जीवन का प्रयोजन हो उठा हो। जो केवल जगत के मंगल के लिए, मानव जाति के कल्याण के लिए, उसके चेतना-स्तर को ऊँचा उठाने के लिए ही जन्मा हो। अपने व्यक्तिगत सब सुखों की, मनोरथों की, बलि चढ़ा चुका हो। जिसके जीवन में अपना कहने को, अपने लिए भोगने को कुछ न हो, सब जाति, धर्म, मानवता के हित अर्पण कर चुका हो। जिसके नयनों में एक ही स्वप्न है, हृदय में एक ही संकल्प, प्राणों में एक ही अभिलाषा, सम्मुख एक ही लक्ष्य-- कैसे इस हिन्दू जाति को, जगत श्रेष्ठ आर्य जाति को, इस प्राचीनतम भारतीय संस्कृति को पुनः संसार में सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित किया जाये। ऐसे एक भागवत पुरुष को विश्व इतिहास महर्षि दयानंद के नाम से हमारे समक्ष उपस्थित कर रहा है।

महर्षि बचपन से ही अंतर्सत्ता में जीवन-लक्ष्य के प्रति सचेतन थे। इसीलिए मानव स्वभाव की दुर्बलताएं उन्हें कभी स्पर्श नहीं कर पायीं। वे सदैव अंतिम श्वास तक उनसे ऊपर थे। जो लक्ष्य उनकी प्रबुद्ध एवं सजग आत्मा ने उनके लिए चुना, उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया और त्याग, तपस्या तथा बलिदान से भरा जीवन यापन कर उसे

संसिद्ध किया। कष्ट उठाये, यंत्रणायें भोगी, विरोधी तत्वों से टक्कर ली, विषैले वातावरण में भी कर्तव्य से नहीं चूके। दुर्भावना से भरे समुदाय को गले लगाया, प्राणों की बाजी लगाकर भी सत्य की ध्वजा फहरायी, ओ३म् की ध्वनि से धरा-आकाश को स्पंदित किया, पाखंडियों के तमसाच्छन्न दम्भ चूर कर, उनके अधिकार से, चंगुल से वेदों को मुक्त किया। उनके द्वारा प्रदर्शित अनुचित अर्थों को धूल में मिलाया। वेदों के सत्य अर्थ को सरल भाषा में सामान्य जन के सामने लाये। उनकी उपयोगिता को समझाया। वेदों के प्रति अनुचित धारणा को, विकृत भावों को, उनके हृदय, मन-बुद्धि से पोंछा और उनकी महिमा, जीवन में उनका युक्ति संगत स्थान दर्शा कर उनका सत्य अर्थ प्रकाशित किया। आर्य जाति की श्रेष्ठता प्रमाणित की, आर्य आदर्श की स्थापना कर मानव जाति के हृदय में यह विश्वास उत्पन्न किया कि एक अदृश्य शक्ति है जो इस सृष्टि के पीछे सहायक के रूप में सदा विद्यमान है, इसे चरम गन्तव्य की ओर, परम आनंद की ओर ले जा रही है और जब-जब अज्ञान की, अंधकार की शक्तियाँ प्रबल हो उठती हैं, उन्हें कुचलने के लिए किन्हीं विशेष व्यक्तियों के द्वारा– जिनकी व्यक्तिगत चेतना अहंकेंद्रित परिधि को लांघ चुकी है, जो दूसरों के लिए जीने को ही जीवन का सही, सच्चा स्वरूप मानते हैं– कार्य करती है।

वेदों के उद्धारक, वैदिक शिक्षा को संसार के सम्मुख लाने वाले इस देव-पुरुष का जीवन, जिसे विभूति कह कर संबोधित करने में हम एक आंतरिक प्रसन्नता अनुभव कर रहे हैं, उस पावन सिंधु की भांति है जो असंख्य रत्नों से भरपूर है। इसकी दूरदर्शिता को देखकर महान् मनीषियों के शीश भी सादर झुक जाते हैं। वेदों का पुनरुद्धार तथा समाज को अंधविश्वासों से बाहर लाने के अतिरिक्त भी महर्षि के कुछ दिव्य कर्म ऐसे हैं जिन्हें स्मरण कर सुरपुर में अभी भी शंखध्वनि कर उन्हें सम्मानित किया जाता है।

वैदिक शिक्षा के प्रति मानव-चेतना को उद्घाटित करना, उसके प्रकाश में जीवन यापन करने की अभीप्सा जगाना, आर्य चरित्र ही सही अर्थ में मनुष्यत्व है, यह विश्वास मनुष्य के हृदय में स्थापन करना, महर्षि के जीवन का लक्ष्य रहा। इसी शिक्षा का जीवंत आदर्श संसार के सामने प्रस्तुत कर महर्षि हमें आमंत्रित कर रहे हैं। सत्य की विजय ही ऋषि की विजय है और आज नहीं तो कल इसकी संसिद्धि अवश्यंभावी है। वेद सृष्टि में प्रथम उद्घोषित शब्द-ब्रह्म की अभिव्यक्ति है। उसी की चरितार्थता में यह पुनः अपने उद्गम से युक्त हो सकेगी। मूल उद्गम से युक्त होना ही सृष्टि का अंतर्निहित लक्ष्य है। उसी की ओर यह अग्रसर हो रही है।

अगर हम सही अर्थ में महर्षि के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना चाहते हैं और उनके अधूरे कार्य को आगे बढ़ाना

चाहते हैं– जो कि वैदिक शिक्षा का प्रचार, वेद की वाणी का, उसके संदेशों का प्रसार करना है– तो प्रथम हमें स्वयं एक आदर्श आर्य पुरुष का जीवंत उदाहरण संसार के सम्मुख उपस्थित करना होगा। तभी हमारे शब्दों में वह शक्ति आएगी जो मनुष्य को असत्य से ऊपर उठाकर, उसका निवास वैदिक सत्य में संभव बनायेगी।

वेद एक जीवंत चेतन ज्योति-स्तंभ है और अपनी ज्योति तथा चेतना को अस्तित्व में बनाये रखने के लिए उसके अंदर पर्याप्त शक्ति है। कितना भी भयंकर अंधकार जगत में छा जाये, कितने भी विदेशी आक्रमण हों, उनका रूप चाहे जो हो, वेद अपने स्थान पर संसार में सदा सम्मानित होते रहेंगे। जब तक एक भी हृदय शुद्ध है, जन-मंगल-भावनाओं से भरपूर है, परमात्मा की ओर उद्घाटित है, तब तक वेद पृथ्वी के वातावरण में सदा प्रकाशमान रहेंगे, अपनी ज्योति को मानव-चेतना पर विकीर्ण करते रहेंगे।

२

अगर हम मानव जीवन में, उसकी चेतना में उत्थान लाना चाहते हैं तो अपने जीवन को बलिदान का स्वरूप प्रदान करें। अगर इस जाति को जगाना, इसके वर्तमान स्तर को ज्योतिर्मय बनाना है तो हमें स्वयं जागना, अपना

चेतना-स्तर ऊँचा उठाना होगा। जन्मभूमि को मातृ रूप में देखना, उसके लिए जीना होगा। अपने अंदर एक ऐसी तीक्ष्ण दृष्टि उत्पन्न करनी होगी जो हमें दिखाये कि इस समय जो हमारा जीवन-स्तर है वह उस आदर्श से दूर है जो हमने अपने सामने रखा है। हमारे विचार अपने तक, अपने परिवार तक ही सीमित हैं। हमारा जीवन अपने लिए है। अभी हम स्वार्थमय जीवन से पूरी तरह ऊपर नहीं उठे। हम देख रहे हैं कि जिन्हें हम अपना आदर्श मानकर चल रहे हैं उनका बलिदानमय जीवन समस्त भू-मंडल पर सूर्य के प्रकाश की भांति चमक रहा है। महर्षि सबके हैं, सबके लिए हैं। उनका हर विचार हर चेष्टा, हर चिंता दूसरों के लिए, मानव मात्र के मंगल के लिए है। मानव जाति को अज्ञान से बाहर लाने के लिए, एक ज्योतिर्मय मानसिकता में स्थित करने के लिए है। जीवन-मार्गों पर मनुष्य का संबंध सीधा सत्य से कराने के लिए साधना है। वे जीवन-भर इसी दिशा में, इसी लक्ष्य की पूर्त्ति के लिए भागीरथ श्रम करते रहे। मानों सत्य के प्रतिनिधि के रूप में ही पृथ्वी पर उनकी आत्मा का अवतरण हुआ हो। उनका अंतर्मन सदा दीपक की लौ की भांति प्रकाश प्रदान करता रहा। अपनी खोई हुई संस्कृति को पुनः प्राप्त करने के लिए, जन जन में इसकी प्राप्ति की अभीप्सा जगाने के लिए प्रज्ज्वलित रहा। अगर हम उनके जीवन का गहनता के साथ अवलोकन करें तो हम देखेंगे– उनके मन में इच्छाएँ नहीं,

हृदय में कामनाएँ नहीं, वे मानवता से कुछ नहीं चाहते। हमें संसार को देखने की उच्च दृष्टि, जो कि वैदिक ज्ञान पर आधारित है प्रदान करना चाहते हैं, अज्ञान से, भ्रांतियों से बाहर लाकर एक सत्यमय चेतना में खड़ा करना चाहते हैं। उन्होंने हमारे सामने मुक्ति-पथ प्रशस्त किया। मानव-जीवन की एक सुन्दर, शास्त्रोक्त व्यवस्था की। वे चाहते थे कि हम वेद-सूर्य से आलोकित पथ पर चलें और सुख पूर्वक गन्तव्य प्राप्त करें। वह देवोपम मानव दयालु था और एक भागवत यंत्र की भांति हमारा भार उठाने को सदा उद्यत रहा। हमें चाहिये कि हम भी अपनी ओर से उनकी शिक्षा के, उनके आदर्श के प्रति समर्पित रहें। हमारा हर कर्म, हर चेष्टा देश के लिए, धर्म के लिए, परमेश्वर के लिए हो। यही वह जीवन कला है जो वे हमें सिखाना चाहते थे। जो जीवन को सही अर्थवत्ता प्रदान करती है। जिनके लिए यह व्यवहार की वस्तु बन जाती है, जो सारी वसुधा को अपना परिवार मानते हैं, वे प्रभु के प्यारे होते हैं। उन पर कृपा बरसती है। उनका हृदय आवरणहीन होता है। उन्हें दृष्टि प्राप्त होती है। वे वस्तुओं में, प्राणियों में, उनके भीतर सत्य को देखते हैं। उनका निवास सत्य में होता है। सत्य में निवास मानव-जीवन की सफलता है। जिसे देखकर हमारे भीतर आत्मा प्रसन्नता अनुभव करती है। जहाँ आत्मा की प्रसन्नता है वहीं प्रभु आशीर्वाद, उनकी कृपा और उनकी सहायता विद्यमान रहती है।

शास्त्रों की दृष्टि में मनुष्य वही है जिसका हृदय आवरणहीन है। आत्मा के प्रकाश से जिसके मन, बुद्धि प्रकाशित हैं। जिसके व्यवहार में आत्मा के गुण झलकते हैं। प्रेम प्रवाहित होता है। जो देश, धर्म और जाति के प्रति सर्वस्व का त्याग करने को, सर्वस्व का बलिदान करने को सब समय उद्यत है। जिसका जीवन अपने लिए न होकर संसार के लिए, परमात्मा के लिए है। जब इतिहास में किसी एक ऐसे आदर्श व्यक्ति के विषय में हम कल्पना करने का प्रयास करते हैं, जो इन सब गुणों से सम्पन्न हो, तब महर्षि दयानन्द सरस्वती का बलिदानों से भरा व्यक्तित्व हमारे नयनों के सम्मुख उभर आता है। हम नतमस्तक हो जाते हैं।

* * *

वेद चरम उपलब्धि के सोपान हैं। वेदों में सभी के लिए मार्गदर्शन सुलभ है। परम प्राप्ति का उपाय है। चाहे हम जीवन के किसी भी क्षेत्र में हैं, हमारा व्यापार चाहे जो भी है, हमारी चाहे जो भी अवस्था है, जीवन-स्तर कैसा भी है। वेद वह स्वर्णिम कुंजी है जिसके द्वारा हमारी सत्ता में बंद द्वार खोले जा सकते हैं। वेद वह द्वार है जिसके द्वारा सर्वत्र, चैतन्य के सब स्तरों पर पहुँचा जा सकता है। उन्हें अधिकृत किया जा सकता है। वेद संजीवनी है जिसके द्वारा हम अमरत्व प्राप्त करते हैं। मानव मन-सीमा का अतिक्रमण कर अतिमानवता में पदार्पण कर सकते हैं।

सूत्र

मनुष्य का बौद्धिक ज्ञान-विज्ञान तब तक अधूरा रहेगा जब तक वह वेद की शरण ग्रहण नहीं करेगा, जब तक उसकी बुद्धि वैदिक प्रकाश की ओर उद्घाटित नहीं होगी।

* * *

वेदों के स्वाध्याय का अर्थ है उनकी शिक्षा को ग्रहण करना। उसे अपने हृदय, मन, आत्मा में धारण करना। जीवन का अंग बनाना। व्यवहार में लाना। वेदाध्ययन के पश्चात् मनुष्य की चेतना परिवर्तित हो जाती है। उसका स्तर ऊँचा उठ जाता है। मन शुद्ध, इंद्रियाँ संयमित हो जाती हैं। भीतर विवेक जागता है। व्यवहार सत्यमय, प्रेममय, दया-धर्म से युक्त होता है। निम्न वस्तुएँ हमारी चेतना को स्पर्श नहीं करतीं। स्वार्थ-भावना से ऊपर उठ जाते हैं। उच्च आध्यात्मिक मानसिकता में निवास हमारे लिए संभव हो जाता है। वही हमारे कर्मों का, भावों का, विचारों का उद्गम होती है। वेदाध्ययन मनुष्य को शुद्ध-सात्त्विक स्तर पर स्थित कर देता है।

* * *

अब समय आया है। मानव बुद्धि कुछ तैयार प्रतीत हो रही है। हम संसार में एक सामंजस्यपूर्ण, सुख-शांतिमय जीवन की स्थापना में सफल नहीं हो पा रहे हैं। अतः वेदों की शरण ग्रहण करने की अभिलाषा मानव मन में, हृदय में
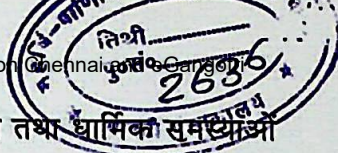
उठ रही है। हम अपनी सब जातीय तथा धार्मिक समस्याओं का समाधान वेदों में खोजने का प्रयास करने लगे हैं। अब हम समझ रहे हैं कि वेद ही मानव आत्मा के पूर्ण विकास में सच्चे पथ-प्रदर्शक हैं। वही उसे उसकी आध्यात्मिक भवितव्यता से जोड़ने में सेतु तथा सहायक सिद्ध होंगे।

* * *

आर्य शब्द को मैं अतिशय सम्मान प्रदान करता हूँ। आर्य व्यक्तित्व के विषय में मेरी धारणा बहुत ऊँची है। एक शब्द में कहूँ तो मैं आर्य उस व्यक्ति विशेष को कहता हूँ जो आत्म-सत्य में निवास करता हो। आत्म-चेतना से प्रेरित होकर जीवन मार्गों पर चलता हो। जिसके विचार, भाव, कर्मों का, दूसरों के साथ व्यवहार का उद्गम आत्मा हो। जो आत्मा के गुणों से सम्पन्न हो। मानों वह संसार में प्रभु का प्रतिनिधि है। उनके सृष्टि-विकास-क्रम में पृथ्वी पर उनका यंत्र है।

हे आर्य ! हे विश्व-श्रेष्ठ जाति ! तेरा भूत काल गगन-मंडल में भगवान भास्कर की भांति चमक रहा है। तेरा भविष्य उज्ज्वल है क्योंकि तेरा जीवन कभी अपने लिए नहीं था, वह सदैव संसार के लिए रहा, मानवता की सेवा में बीता। ऐसा कर कि आज भी तेरा सर्वस्व संसार के उपकार के लिए, मानव में भगवान के लिए हो। यही वह दिव्य लक्ष्य है जिसके लिए महान आत्माएं, महान जातियाँ भूतल पर जीवन धारण करती हैं।

यह घड़ी युगान्तर की है। चीजें बड़ी तेजी से बदल रही हैं। प्राचीन पीछे छूट रहा है। पुरानी वस्तुओं का स्थान नई ग्रहण करने जा रही हैं। वैदिक शिक्षा से विहीन वर्तमान सभ्यता के पैर लड़खड़ा रहे हैं। ऐसे समय में आर्य जाति का, भारत माता की संतानों का दायित्व और भी अधिक बढ़ जाता है। दिन-दिन उन्नत होती हुई आधुनिक सभ्यता की चुनौती का हम तभी उत्तर दे सकते हैं अगर हमारे पास आत्मिक शक्ति है, आत्म-ज्ञान है। हमें चाहिये हम परस्पर मिलें। एक दूसरे में दोष न देखें। वरन् उन्हें दूर करने का उपाय खोजें। हमें हार्दिक प्रसन्नता है कि संसार में केवल हमारे पास ही वह निधि है जो सदैव मनुष्य की समस्याओं का समाधान प्रदान करने में समर्थ है। वह निधि वेद हैं। जो संसार के सब पदार्थों का, तत्वों का, शक्तियों का ज्ञान रखते हैं।

* * *

परमात्मा से जो मेरी प्रार्थनाएँ हैं उनमें सदैव यही प्रमुख रही है। हे प्रभो ! ऐसी कृपा कर मनुष्य समझें कि मानव मात्र का गन्तव्य एक है और सभी धर्म उसकी प्राप्ति में केवल मार्ग रूप हैं।

सृष्टि में उत्पन्न ये विभिन्न पदार्थ एवं प्रणीं अपने मूल में उसी प्रकार एक हैं जैसे शाखाएँ अनेक होते हुए भी वृक्ष एक होता है। सम्पूर्ण विश्व-वृक्ष एक है। इसका मूल एक है, उद्गम एक है। सृजक, पालक, रक्षक एक है।

सुखवीर आर्य

हमारे अन्य प्रकाशन

"दिव्य जीवन की ओर" उच्च जीवन के लिए प्रेरित करती है। उच्च चेतना में निवास का महत्व समझाती है। इस समय हमारे हृदय पर पर्दा है। जीवन-मार्ग आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित नहीं हैं। "दिव्य जीवन की ओर" हृदय को आवरणहीन बनाने की, चेतना को प्रदीप की लौ का रूप प्रदान करने की प्रक्रिया सिखाती है। मूल्य : ४० रु० (अंग्रेजी में भी उपलब्ध)

अतिमानस क्या है ! श्रीअरविन्द के द्वारा बार-बार घोषणा करने पर भी इसके अस्तित्व में, पृथ्वी पर अवतरित होने में विश्वास करना मानव बुद्धि के लिए कठिन पड़ रहा है। इसे सरल, बोधगम्य बनाने का प्रयास है अतिमानस की ओर"। " मूल्य : [illegible] रु०

मनुष्य की संपूर्ण सत्ता का, उसके निम्नतम भाग शरीर का भी आत्मा की दिव्यता में रूपान्तर संभव है। रूपान्तर के विषय में हमारी धारणा सुस्पष्ट हो, इसी का प्रयास है, "रूपान्तर की ओर"। मूल्य : ५०रु०

आगामी युग अतिमानसिक होगा। संसार हर वस्तु का नया, शुद्धतम रूप देखेगा। आध्यात्मिकता अपने शुद्धतम रूप में जगत का त्याग नहीं करती है। वरन्, आत्मा की दिव्यता में उसका रूपांतर संभव बनाती है। इसी विषय की चर्चा है – "आध्यात्मिकता का नया स्वरूप"। मूल्य : ५०रु०

भावी क्रांति आध्यात्मिक होगी, मानव मानसिक चेतना से ऊपर उठेगा। अतिमानसिक चेतना उसके लिए स्वाभाविक होगी। उसे आत्मा की दिव्यता में रूपांतरित करेगी। मानव मानवता का अतिक्रमण कर अतिमानवता में उत्थान लाभ करेगा। इसी विषय का विस्तार है 'भावी क्रांति का स्वरूप'। मूल्य : ६०

सुखवीर आर्य

प्राप्ति स्थान :– SABDA श्रीअरविन्द बुक्स डिस्ट्रीब्यूशन एजेंसी, श्रीअरविन्द आश्रम, पांडिचेरी–२

Rs. 15.00